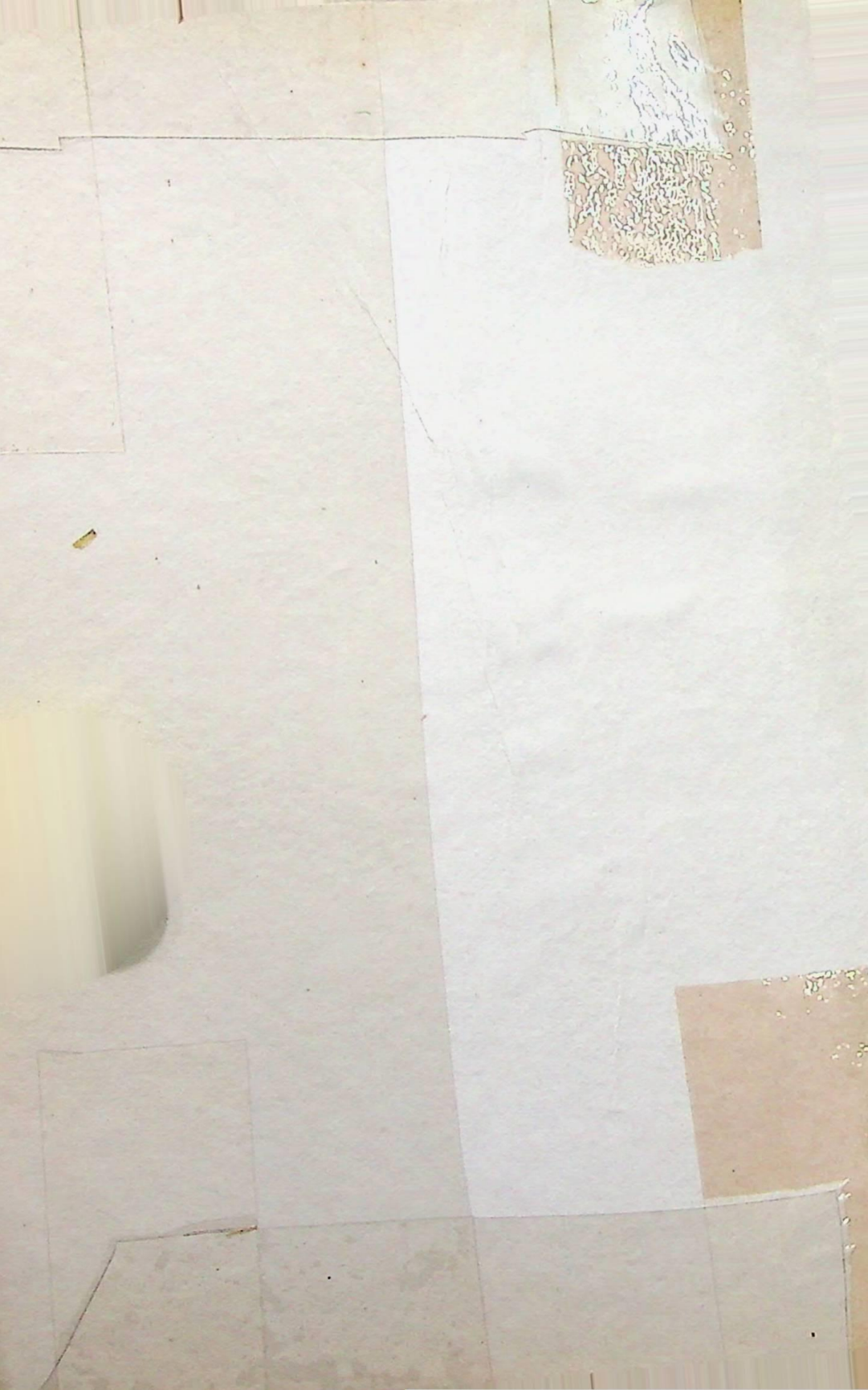


पंच महायज्ञ



ब्रह्म० कृष्णादत्त जी



6/3/203

205/570

पंच महायज्ञ

७/३/२०३

पूज्यपाद ब्रह्म० कृष्णदत्त जी महाराज
के
योग मुद्रा में प्रसारित वैदिक प्रवचन

गांधी धाम समिति (पंजीकृत)

श्री महानन्द संस्कृत महाविद्यालय, वारणावत
लाक्षागृह, बरनावा, मेरठ (उत्तर प्रदेश) - २५०३४५

वैदिक अनुसन्धान समिति (पंजीकृत)

१, (प्रथम तल) गोखले मार्केट, तीस हजारी कोर्ट के पास,

दिल्ली-११००५४

फोन: २५१००७१, २९३२९०४

मूल्य : बीस रुपये
प्रथम संस्करण : फरवरी १९९४
प्रतियां : ११००

प्रकाशक : वैदिक अनुसन्धान समिति (पंजीकृत)
१, (प्रथम तल) गोखले मार्केट,
तीस हजारी कोर्ट के पास, दिल्ली-११००५४
फोन: २५१००७१, २९३२९०४
लेजर : डी.जे.आई. पब्लिकेशन्स (वॉकमेन कम्प्यूटर विभाग)
कम्पोजिंग : न. १४९, आनन्द नगर, इन्द्रलोक, दिल्ली-११००३५
फोन: ६४५०१६८, ६४२३९७४
मुद्रक : नवप्रभात प्रिंटिंग प्रेस,
बलबीर नगर, शाहदरा, दिल्ली-११००३२
फोन: २२८५७५३

विषय सूची

क्रम स.	विषय	पृष्ठ स.
	भूमिका	
१.	ब्रह्मयज्ञ (अमृतसर १ अगस्त १९८५)	१
	- साकल्य	१०
२.	देवपूजा (यज्ञ) - १ (अमृतसर २ अगस्त १९८५)	१५
३.	देवपूजा (यज्ञ) - २ (अमृतसर ३ अगस्त १९८५)	३१
४.	पितृ कौन हैं - १ (अमृतसर ४ अगस्त १९८५)	४६
५.	पितृ कौन हैं - २ (अमृतसर ५ अगस्त १९८५)	६१
	- अशुद्ध अन्न	६५
६.	पितृ यज्ञ (अमृतसर ६ अगस्त १९८५)	७५
७.	अतिथि (सरोजनी नगर, नई दिल्ली ५ अक्टूबर १९८६)	९१
	- महर्षि गौतम का उपदेश	९५
	- महर्षि कागभुषंड का उपदेश	९७
	- महर्षि लोमश का उपदेश	९८
	- ब्रह्मचारी कबन्धि का उपदेश	१००

८.	अतिथि यज्ञ	१०४
	(सरोजनी नगर, नई दिल्ली ६ अक्तूबर १९८६)	
	- ब्रह्मचारी सुकेता का उपदेश	१०८
	- कुम्भकरण का उपदेश	११०
	- रावण का उपदेश	११३
९.	अतिथि का तर्पण	११६
	(सरोजनी नगर, नई दिल्ली ७ अक्तूबर १९८६)	
	- प्राणायाम	११९
१०.	पंचीकरण का सूत्र	१२९
	(सरोजनी नगर, नई दिल्ली ८ अक्तूबर १९८६)	
११.	बलिवैश्वदेव यज्ञ	१४३
	(सरोजनी नगर, नई दिल्ली ११ अक्तूबर १९८६)	
	- वाचोकृतम अग्निपान यंत्र	१४९

भूमिका

हमारे ऋषि-मुनियों के अनुसार 'वेदोक्त आध्यात्मिक मार्ग' ही स्वर्ग का सोपान है और आध्यात्मिक मार्ग की सिद्धि की सीढ़ियाँ वैदिक नित्यकर्म एवं पंच महायज्ञ हैं। मोक्ष प्राप्ति मानव जीवन का परम लक्ष्य है, वैदिक नित्यकर्म एवं पंच महायज्ञ द्वारा उस लक्ष्य प्राप्ति की साधना की जाती है। महर्षि मनु के अनुसार -

वेदोदितं स्वकं कर्म नित्यं कुर्यादतन्द्रितः।

तद्धि कुर्वन् यथाशक्ति प्राप्तनोति परमां गतिम्॥ मनु० ४.१४॥

अपने वेदोक्त कर्म को नित्य आलस्य छोड़ कर अपनी सामर्थ्य के अनुसार करने से परम गति (मुक्ति, मोक्ष) की प्राप्ति होती है। पूज्यपाद ब्रह्म० कृष्णदत्त जी इसी आध्यात्मिक मार्ग के पथिक के रूप में हमारे बीच से चले गये। उन्होंने १९८५ और ८६ के वर्षों में पंच महायज्ञ विषय पर बड़े विस्तार से चर्चा की थी। उनमें से कुछ चुने हुए प्रवचनों का प्रकाशन इस पुस्तक रूप में किया गया है।



दानेषु श्री मदन गोपाल खोसला
(आप समिति के आजीवन कोषाध्यक्ष रहे)



दानेषु डा. पीतम सिंह चौहान
(आजीवन सदस्य संख्या २७०८)

ब्रह्म० जी के प्रवचनों से प्रकाशित पुस्तकें

पुराना साहित्य

१. वैदिक प्रवचन (पुष्प ६३ तक)	७ रुपये
२. शंका निवारण	७ रुपये
३. आत्मा व योग साधना	१० रुपये
४. आत्म लोक	१५ रुपये
५. धर्म का मर्म	१५ रुपये
६. यज्ञ महत्व	१६ रुपये
७. अलंकार व्याख्या	१८ रुपये
८. अतीत का दिग्दर्शन (वैज्ञानिक खंड)	४० रुपये

नवीन संस्करण

१. यौगिक प्रवचन माला (भाग १,२,३) प्रत्येक	४० रुपये
२. वेद पारायण यज्ञ का विधि विधान	१५ रुपये
३. महाभारत के रहस्य	१५ रुपये
४. देवपूजा	१८ रुपये
५. रामायण के रहस्य	२० रुपये

नवीन प्रकाशन

१. महाराजा रघु का याग	२० रुपये
२. मोक्ष प्राप्ति का मार्ग	२० रुपये
३. वनस्पति से दीर्घ जीवन	२० रुपये
४. चित्त की वृत्तियों का निरोध	२५ रुपये
५. आत्मा-प्राण और योग	२० रुपये
६. पंच महायज्ञ	२० रुपये

ज 3/202

ब्रह्म यज्ञ

देखो मुनिवरो! आज हम तुम्हारे समक्ष पूर्व की भाँति कुछ मनोहर वेद मंत्रों का गुणगान गाते चले जा रहे थे। यह भी तुम्हें प्रतीत हो गया होगा आज हमने पूर्व से जिन वेद मंत्रों का पठन-पाठन किया। हमारे यहां यह जो पठन-पाठन की प्रतिक्रियाएं हैं, यह परम्परा से ही महान और पवित्रता में सदैव रक्त रही हैं। प्रत्येक मानव इस प्रातःकाल की पवित्र वेला में वेदों का उद्गान गाता रहता है। वह किसी भी रूप में गान गाता रहे परन्तु वेदों की प्रतिभा का वर्णन प्रायः उसके मस्तिष्क में रहता है, जहां हम यह विचारते हैं कि हमारा नित्यप्रति जो क्रियाकलाप होता रहता है वह विशुद्ध और महानता से गुथा हुआ है। हमारे यहां जब वैदिक आचार्यों ने एक क्रियाकलाप बनाया कि मानव जब इस संसार में आया है तो यह कर्मबद्ध हो करके आया है क्योंकि इसके कर्मों की प्रतिभा बड़ी विचित्रतम मानी गई है तो इसका कोई न कोई क्रियाकलाप क्रमबद्ध होना चाहिए।

हमारे यहां नाना ऋषि-मुनियों की विचारधाराएं तपोमय रही हैं, ऐसा मुझे स्मरण है। ऐसा साहित्य से भी प्राप्त हुआ है कि सृष्टि के प्रारम्भ में जब मानव का कर्मबद्ध हो करके इस संसार में आगमन हुआ तो आध्यात्मिक विज्ञानवेत्ताओं ने उसके जीवन की रूपरेखा का निर्माण किया। वह निर्माण तपस्वियों के द्वारा होता है, क्योंकि तपस्वीजन इस बात को जानते हैं कि मानव के क्रियाकलापों की ऐसी भूमिका होनी चाहिए जिससे वह रूढ़ि न बन पाये, क्योंकि अज्ञान होगा तो रूढ़ि अवश्य होगी। हमारे यहां दो प्रकार की रूढ़ियों का वर्णन प्रायः वैदिक साहित्य में आता रहा है। एक

रूढ़ि वह कहलाती है जिससे माता प्रीति में रत्न हो करके पुत्र का पालन करती है। एक रूढ़ि वह होती है कि आचार्य कुल में जब ब्रह्मचारी प्रवेश करता है तो वह उसका एक क्रियाकलाप बनाता है और उसको सीमाबद्ध कर देता है। वह ब्रह्मचारी के विचारों में रूढ़ि बन सकती है परन्तु जो वैदिक साहित्यों का क्रियाकलाप है, उसमें रूढ़ि नहीं बन पाती तो इनको किसी रूप में रूढ़ि उच्चारण नहीं कर सकते क्योंकि यह तो सीमा में है। रूढ़ि उसे कहते हैं जो सीमा से पृथक् हो जाती है, जिसमें अति हो जाती है और अति के आ जाने से ही उसमें अज्ञानता भासने लगती है और जब अज्ञानता आ जाती है तो वही मानव पिपासी बन जाता है।

पुत्रो! मैं उच्चारण कर रहा था कि सृष्टि के प्रारम्भ में ही इस मानव के क्रियाकलाप की एक धारा का निर्माण किया। निर्माणवेत्ताओं में जो ऋषि-मुनि तपश्चर ब्रह्मचारी थे, ब्रह्मवर्चोसी थे, उन्होंने विशाल तप किया और तप करने के पश्चात् उन्होंने इस मानवत्व को बाह्य और आन्तरिकता, दोनों में दृष्टिपात किया। यह बाह्य क्या है और आन्तरिक क्या है? जो आन्तरिकता है, उसको बाह्य जगत में लाने का प्रयास किया है और वह लाया गया उसका परिणाम यह हुआ कि उन्होंने मानव की एक भूमिका बनाई और विद्वतता और वेद की प्रतिभा के रूप में निहित रहे। ऋषि-मुनियों ने तपस्या के द्वारा विचारा और उन्होंने प्राण और अपान दोनों को याग में लाने का प्रयास किया, दोनों को यागमयी स्वीकार करके उनका समन्वय किया। जब प्राण और अपान में व्यान और समान का भी समन्वय किया तो उदान का चित्त के मंडल से समन्वय हो गया। जब इस समन्वय की चर्चा आई तो ऋषि-मुनियों ने समाधिष्ठ हो करके एक-एक आभा को दूसरे में पिरोई हुई दृष्टिपात की। जब एक-दूसरे में पिरोने की विवेचना हुई तो वेद मंत्रों में एक ऐसे शब्द की रचना उनके समीप आने लगी जो एक ध्वनि के रूप में परिणित हुआ। वह ध्वनित होता हुआ ओ३म् रूपी सूत्रों भवा

सम्भवा, वह ध्वनित होने लगा, क्योंकि बाल्य का जब जन्म होता है तो ऋषि-मुनियों ने सोचा कि वह अहम्, वह जो अहंकार कहलाता है, उस अहंकार का उन्होंने ओ३म् रूपी सूत्र से समन्वय कर दिया।

जब प्राणी समाधिष्ट हुआ तो उन्होंने प्राण और अपान दोनों को समन्वय करने का प्रयास किया। दोनों के मिलान होते ही ध्वनि का जन्म हुआ और वह ध्वनि जब ध्वनित होने लगी तो उस ध्वनि को भी अलंकृतियों में रत्न करने लगे। अहंकार के रूप में जब उसका मंथन किया गया तो वह भी ओ३म् की एक ध्वनि बन गई। जब ध्वनि बन गई तो विचारा गया कि यह जितना भी संसार का साहित्य है अथवा वैदिक स्रोत है उसके प्रारम्भ के रूपों में ओ३म् ध्वनि का प्रतिपादन होता है और ओ३म् जो ध्वनि है वही अहंकार कहा जाता है, बाल्य के जन्म होते ही इसकी स्मरण शक्ति उसके हृदयों में निहित रहती है।

विचार विनिमय क्या कि पुत्रो! यह मानव की भूमिका बन गई, क्रियाकलाप की भूमिका बनी। यह विचार आ गया कि हमारा जो प्रत्येक द्वार है, उस द्वार का समन्वय प्रकृति से रहता है और प्रकृति में भी सात प्रकार की धारा कहलाती हैं। एक धारा का नाम जमदग्नि कहा गया, द्वितीय धारा का नाम विश्वामित्र कहा गया और तृतीय धारा का नाम वशिष्ठ कहा गया और चतुर्थ का नाम कश्यप कहा गया और पंचम धारा का नाम गौतम के रूप में हुआ और देखो, वह जो छठी धारा है उसका नाम अत्रि कहते हैं और सातवीं धारा का नाम भारद्वाज कहा गया। यह सात धाराओं का जन्म हुआ तो उन्हीं को सप्तऋषि कहने लगे, उन्हीं को सप्त होता कहने लगे। वेद के मंत्रों में से ऋषि-मुनि समाधिष्ट हो करके इन शब्दों की रूपरेखा बनाने के लिए तत्पर रहे कि यही वास्तव में हमारा जीवन है। हम जब इस

प्रकार की धाराओं को लाने का प्रयास करेंगे तो हमारे मानवीय जीवन की धारा एक विचित्र बन सकती है।

आगे जब उन्होंने और गम्भीरता से अध्ययन किया, अध्ययन करने के पश्चात सामब्रह्मे वाचलोकी सम्भवाः, वेद की इस आख्यिका को ले करके उसको अन्तर-ध्वनि में ले गये। अन्तर-ध्वनि जो मस्तिष्क के अग्रभाग में जिसे त्रिवेणी कहते हैं, जहां इंगला और पिंगला दोनों का समन्वय होता है तो वहां एक ध्वनि का जन्म हुआ और वह जो ध्वनि है वह वाह्य जगत में ध्वनित हो करके मानव के समीप आ गई। तो सृष्टि के प्रारम्भ में ऋषि-मुनियों ने विद्यमान हो करके यह विचारा कि मानव का एक क्रियाकलाप होना चाहिए क्योंकि मानव का जीवन सुगन्धि चाहता है। यह दुर्गन्ध नहीं चाहता, सुगन्ध चाहता है, यह ऊर्ध्वा में जाना चाहता है क्योंकि ऊर्ध्वा में उड़ान उड़ने वाला जो परमाणु है, वह ऊर्ध्वा में भी जाना चाहता है, वह ध्रुवा में भी गति करना चाहता है। वह मध्य में, भू में भी गति करना चाहता है। जब यह सब उनके समीप आ गया तो उन्होंने मानव के प्रातःकाल में ले करके सांयकाल तक के लिए इसकी भूमिका बनाई और कहा कि मानव! तू प्रातःकाल की पवित्र वेला में अपने आसन को त्याग। प्रातःकाल की पवित्र वेला में मानव आसन को त्यागने के पश्चात वह अपनी भूमिका बनाता है, अपनी शरीरिक क्रिया से निवृत्त होता है। वैदिक आचार्यों ने बेटा! उस काल में पांच प्रकार के यागों का चयन किया। यह जो पांच प्रकार के यागों की उपलब्धि हैं, यह सृष्टि के प्रारम्भ से हुई हैं।

यह पांच प्रकार का याग क्या है? हे मानव! तू प्रातःकालीन अपनी शारीरिक क्रियाओं से निवृत्त हो करके प्रभु के समीप जाने का प्रयास कर, तू ब्रह्मयाग कर। गृह में पति-पत्नी हैं तो उन्हें ब्रह्मयाग में रत हो जाना चाहिए। प्रातःकाल में ब्रह्मचारी और आचार्य दोनों को ब्रह्मयाग करना चाहिये, वे

ब्रह्मयागी बन जाए। कहीं भी किसी भी स्थलि पर कोई मानव विद्यमान है तो वह ब्रह्मयागी बन जाए क्योंकि यह जितना भी प्राणीमात्र है, जो आत्मवत्त है, यह सर्वत्र प्रातःकालीन अपनी क्रियाओं से निवृत्त हो करके गान गाता है। यह ध्वनित हो रहा है। जो प्राणी है वह प्राणों से ध्वनित हो रहा है, जो जीवात्मा और प्राणों को समूह से करके रत्त रहता है, वह भी एक गान गा रहा है। परमात्मा के राष्ट्र में, प्रभु के राष्ट्र में जितना भी प्राणीमात्र है वह सब प्रातःकालीन गान गा रहा है और वह गान गाता हुआ अपने में प्रसन्न हो रहा है। इसी प्रकार हे मानव! प्रातःकालीन तुम ब्रह्मयागी बनो और तुम नाना प्रकार के अज्ञान में प्रवेश न करते हुए जो तुम्हारे मस्तिष्क में ध्वनि हो रही है, वह स्वरों का ज्ञान हो रहा है। प्रत्येक वेदमंत्र में ध्वनि होती हुई प्रतीत होती है, वह ध्वनित होता हुआ दृष्टिपात आता है।

जब वेद का याचक वेद के गर्भ में, वेद की भूमिका बनाने लगता है और जब उसका गान गाता है तो प्रत्येक वेदमंत्र उसके समीप एक छन्द बन करके रहता है। प्रत्येक वेदमंत्र अपनी आभा में रत्त और विज्ञान की धाराओं की उपलब्धि करने वाला है, ब्रह्म याग की उपलब्धि करने वाला है। परमात्मा का रचाया हुआ ज्ञान और विज्ञान वेदमंत्र में निहित रहता है परन्तु परमात्मा का जो विशाल विज्ञान है अथवा ज्ञान है, उसकी रचना का नृत्त है, उसके लिए मानव सदैव विचारता रहता है। प्रातःकालीन ब्रह्मयज्ञ का अभिप्राय है कि हम परमपिता परमात्मा के ब्रह्ममयी विचारों में, उसकी उपासना के रूप में रत्त हो जाएं और उपासना करते रहें। हे देव! तू महान और विचित्र बन करके हमारे अंग-संग रहने वाला है, तू अन्तरात्मा में विद्यमान है, हमारी हृदय रूपी गुफा में विद्यमान है। हृदय, आत्मा में भी एक गुफा है, जिसमें वह चैतन्य देव प्रतिभा रूप में रत्त रहने वाला है। वह जब रत्त रहता है तो उसको ब्रह्मयाग कहते हैं।

ब्रह्मयाग की चर्चाएं मुनिवरो! हम इससे पूर्व काल में भी कर रहे थे। आज भी मुझे स्मरण आ रहा है कि हमें ब्रह्मयाग करना चाहिए। ब्रह्मयाग का अभिप्राय यह है कि ब्रह्म के समीप जाने का हमें प्रयास करना चाहिए। ब्रह्म के समीप प्राणी कैसे जाता है? प्रातः काल की पवित्र वेला में वह अपने मानवीय जीवन को व्यष्टि से समष्टि में प्रवेश करता है, वह समष्टि में ले जाता है। देखो, यह संसार का जितना भी वैभव है, संसार की जितनी भी वृत्तियां हैं यह सब व्यष्टि में ले जाने वाली हैं और जब मानव इनसे उपराम होता है कि इसके मूल में क्या है तो प्रत्येक वस्तु के मूल में कोई न कोई वस्तु तुम्हें दृष्टिपात आयेगी और जब तुम मंथन करते-करते किसी भी वस्तु के अंतिम चरण में पहुंचोगे, अंतिम रूप में प्रवेश हो जाओगे, वहां स्थिर रहने का नाम ही प्रभु की पगडंडी को ग्रहण करना है।

जब एक मानव किसी के मूल में जाना चाहता है तो वह विचारता है कि यह सतोगुण क्या है, विचारने लगता है कि तुझे सत्य उच्चारण करना है। सत्य के गर्भ में वह इन वाक्यों को विचार करके प्रवेश कर जाता है और वह विचारता है कि संसार में सत् ही है क्योंकि प्रत्येक अणु और धाराएं सत्यता के गर्भ में निहित हो रही हैं। सब जगत में सत्य ही सत्य है। देखो, पालन करना भी सत्य है, मानव से प्रीति करना भी सत्य है। जब सत्य के ही गर्भ में प्रवेश कर जाओगे तो सत्य ही सत्य तुम्हें दृष्टिपात आने लगेगा। वह व्यष्टि से समष्टि में प्रवेश होना है। विचार यही है कि व्यष्टि और समष्टि दोनों के ही रूप में तुम्हें रत्न हो जाना है। उसके मूल में जब विचारोगे तो सत्य के मूल में विचारते-विचारते अंत में तुम्हें प्रभु दृष्टिपात आने लगेगा। जब तुम रजोगुण के गर्भ में पहुंचोगे कि रजोगुण तो है परन्तु इसके गर्भ में केवल शासनकर्ता है। माता पुत्र पर शासन कर रही है और शासन किस

लिए कर रही है क्योंकि माता यह चाहती है कि मेरा शासन बाल्य पर इतना होना चाहिए जिससे मैं अपने पुत्र को महान बना दूँ।

मैंने पुरातन काल में निर्णय देते हुए कहा था कि आचार्य अपने ब्रह्मचारी को अनुशासन में लाना चाहता है परन्तु वह रजोगुण है। उस रजोगुण के गर्भ में सत्य की प्रतिभा है और वह रजोगुण में अपने ब्रह्मचारी को महान पवित्र बनाना चाहता है। ब्रह्मचारी सुचरित्र हो, सुविचारक हो, सुगार्हपथ्य हो, सुअग्निवेत्ता हो इस प्रकार की भावना उसके गर्भ में रहती है। अनुशासन को विचारते रहो तो वह विद्या की प्रतिनिधि क्रिया बन जाती है, वह अन्त में प्रभु की कृति दृष्टिपात आती है क्योंकि यह जितना जगत है, वह अन्त में प्रभु की कृति दृष्टिपात आती है क्योंकि यह जितना जगत है, यह सब अनुशासन में है। सूर्य प्रातःकालीन उदय होता है, शनैः शनैः किरणों को लाता है, पृथ्वी पर आच्छादित हो जाता है परन्तु वह सूर्य केवल एक अनुशासनमयी दृष्टिपात आने लगता है। प्रातःकाल में धीमा-धीमा प्रकाश होता है, शीतल होता है, रात्रि के परमाणुओं को वह ऊष्ण बनाने लगता है और जब मध्य में सूर्य आता है तो उसका जीवन तेजोमयी बन जाता है। तेजोमयी बन करके प्रकाश भी देता है, ऊष्ण भी बनाता है, तेजस्वी भी बना हुआ है परन्तु देखो, वही शाम को पुनः धीमा बन करके रात्रि के परमाणु जागरूक हो जाते हैं और उन तेजोमयी परमाणुओं में रक्त हो जाते हैं। परिणाम यह कि सांयकाल को वह शांत्वना में प्रवेश हो जाता है।

याचक विचारता है कि यह प्रभु का कैसा प्रिय अनुशासन है। सूर्य अनुशासन में है, पृथ्वी नाना प्रकार के परमाणुओं को कहां-कहां से ले करके, कहीं अग्नि से लेती है तो कहीं चन्द्रमा से लेती है, कहीं सूर्य से लेती है, प्राण वायु से ले लेती है और अवकाश अन्तरिक्ष से ले करके पृथ्वी अनुशासनमयी कहलाती है। अनुशासनवेत्ता यह विचारता है कि अरे! यह तो सर्वत्र जगत ही अनुशासन में है। माता अपने पति के समीप जब

गृह स्वामिनी बन करके अपनी वार्ता प्रकट करती है तो उसके अनुशासन में एक विचित्रता आ जाती है। पुत्र के समीप जब अनुशासन में प्रवेश होती है तो वहां एक विचित्रता आ जाती है। पिता के समीप कन्या जाती है तो उसका अनुशासन एक भिन्न बन जाता है, परन्तु भिन्न बन जाने से अंत में जब अनुशासन की प्रतिक्रियाओं में अंतिम छोर पर पहुंचोगे तो प्रभु ही दृष्टिपात आने लगेंगे। तो मेरे प्यारे! इस प्रकार का जो यह ब्रह्मयाग है, यही व्यष्टि से मानव को समष्टि में ले जाता है। नेत्रों की ज्योति है, वह ज्योतिवान बन करके उस ज्योति के समन्वय को विचारने लगता है। विचारता हुआ जड़ देवताओं के समीप चला जाता है, चेतन्य देवताओं के समीप चला जाता है। जब वह दूर चला जाता है तो अंतिम छोर पर मौन हो जाता है।

बेटा! मैं आज तुम्हें उच्चारण कर रहा हूं कि मानव को ब्रह्मयाग करना चाहिए। जब वह ब्रह्मयागी बनेगा तो इसे अज्ञान नहीं भासेगा। अज्ञान उस काल में भासता है जब यह प्रभु की सृष्टि को निहारता नहीं, जब यह प्रभु की महानता को अपने में धारण नहीं करता, जब यह उसके चिन्तन में विशाल नहीं बनता तो यह नाना प्रकार का तीक्ष्ण क्रियाकलाप करता अपने मानव जीवन को निष्कृष्टता में ले जाता है। तो विचार क्या कि जब महाराजा अश्वपति के यहां हम अपने में ब्रह्मचारियों को प्रातःकालीन शिक्षा देते तो ब्रह्मचारी व्यष्टि और समष्टि की विवेचना विद्यालय में ही प्राप्त कर लेता क्योंकि विद्यालय में आचार्य और ब्रह्मचारी दोनों को ब्रह्मयाग करना चाहिए। माता पुत्र को भी, बालिकाओं को भी अपने में ब्रह्मयाग करा देती है जिससे उसे अज्ञान न भासे क्योंकि अज्ञान का आ जाना रूढ़ि है। अज्ञान के आ जाने से ही मानव में मानव के भक्षण करने की प्रवृत्तियां आ जाती हैं। तो परिणाम क्या है? मैं तुम्हें उच्चारण कर रहा हूं कि **मानव प्रातःकालीन ब्रह्मयाग करते-करते मौन हो जाता है** क्योंकि ब्रह्मयाग में परिणित होता मानव अपने अंग-अंग की भूमिका बनाता हुआ अपने को प्रकृति के क्षेत्र

में ले जाता है और प्रकृति के क्षेत्र को ले करके यह ब्रह्म में प्रवेश करा देता है। ब्रह्म में इसकी समाहितता हो जाती है और जब समाहितता हो जाती है तो यह ब्रह्मयाग कहलाता है।

पुत्रो! ब्रह्मयाग का अभिप्रायः तुमने जान लिया होगा कि हम ब्रह्मयाग किसे कहते हैं? प्रातःकालीन विद्यमान हो करके वह वेदों की ध्वनियों में ध्वनित हो रहा है, वह गान गा रहा है। जटा पाठ में गान गाता हुआ अपने को मालापाठ में ले जाता है। माला पाठ में ले जा करके बाह्य जगत में ध्वनित हो करके ही उन प्रवृत्तियों को आन्तरिक जगत में ले जाता है। आन्तरिक जगत में वह ध्वनियां हो रही हैं, वह नृत्त हो रहा है, जैसे सम्भवा लोकाम्, यह प्रकृति अपने में नृत्त कर रही है। केवल उस ब्रह्म के सन्निधान मात्र से ही इसका नृत्त प्रारम्भ हो जाता है। वह कैसा नृत्त है पुत्रो? वह सबके समीप हो रहा है और वह एक आभा में हो रहा है। वही नृत्त जब योगेश्वर, साधक अपने में प्रवेश हो करके आन्तरिक मस्तिष्क में ले जाता है, आन्तरिक ब्रह्मरन्ध्र में ले जाता है तो वहां पिपाद झरना झर रहा है, अमृत की धाराओं का गमन हो रहा है। वहां ब्रह्मांड की धाराओं का दिग्दर्शन किया जा रहा है परन्तु ब्रह्म का चिन्तन किया जा रहा है। वह ब्रह्म में समाधिष्ठ हो करके, लघु मस्तिष्क में प्रवेश करके अपने को महान बनाता हुआ प्रभु में ही अपने को दृष्टिपात करने लगता है।

मेरे पुत्रो! आज मैं प्रभु के इस ब्रह्मयाग की चर्चा तो करता ही रहूंगा। यह एक बड़ा विचित्र जगत है। एक वेद का मंत्र है, एक वेद की धारा है, उसी में से नाना प्रकार के जगत की प्रतिभा का जन्म हो जाता है। वेद के मंत्रों के द्वारा उपासना करता उपासक ब्रह्मयाग में परिणित हो जाता है। एक वेद मंत्र को लेता है और उसी वेद मंत्र की विचित्र भूमिका बनता हुआ अन्त में देखो, अन्तिम छोर पर वह मौन हो जाता है। तो विचार विनिमय क्या कि सबसे प्रथम शारीरिक क्रियाओं से निवृत्त हो करके

मानव को ब्रह्मयाग करना चाहिये, प्रातःकाल की पवित्र वेला में ब्रह्मयाग होना चाहिए। जब पति-पत्नी गृह में इस ब्रह्मयाग को करते हैं तो उसका गृह स्वर्ग और महान पवित्र बन जाता है। उनके ब्रह्म के गुथे हुए विचार उस वायुमंडल में प्रवेश हो जाते हैं। यह वाक् कहां से जन्म हुआ? इस वाक् का कोई जन्म है, इस वाक् ने कहीं जन्म लिया है और यह कहां लिया है?

साकल्य मुनि

आओ पुत्रो! आज तुम्हें मैं सोभनी ऋषि के द्वार पर ले जाना चाहता हूं। सोभनी ऋषि महाराज एक वेद मंत्र का अध्ययन कर रहे थे और वेद मंत्र था वाक्याम् भविते ब्रह्माः वाचो सम्भवो लोकाम् व्याक्यानी कथनम् ब्रह्मेः व्याप्तानाम् ब्रस्ते हृदयः। सोभनी ऋषि यह विचारने लगा कि वेद मंत्र ऐसा कहता है कि यह पवित्रता के जो शब्द हैं, यह हमारे गृहों में, हमारे आश्रमों में भ्रमण करते रहते हैं। जब इसके ऊपर मंथन करने लगे, विचारते रहे तो यह वाक् उनके आंगन में आ गया। वे प्रातःकालीन वेद-ध्वनि को गाते रहते तो एक समय एक उज्वांक केतु दैत्य उनके समीप आ गया, उसकी तामसिक प्रवृत्ति बन गई थी। जब वह दैत्य समीप आया तो उसकी प्रवृत्ति में अन्तर्द्वन्द्व बन गया। अन्तर्द्वन्द्व बन करके अन्त्र प्रकाश में आ गया। वह अन्धकार से प्रकाश में आ करके ऋषि के चरणों की वन्दना करने लगा। सोभनी ऋषि बोले कि हे दैत्यराज! तुम चरणों की वन्दना क्यों कर रहे हो? तुम तो मानव को नष्ट करने वाले हो। दैत्य ने कहा प्रभु! मैं आज तुम्हारे इस आसन पर आया हूं। मैंने कवच को दृष्टिपात किया है और जब मैं उस कवच के अन्तर्गत आया हूं तो मेरे मन की, मेरे हृदय की प्रवृत्तियों में अन्तर आ गया और मेरा अंधकार प्रकाश में आ गया है। भगवन्! यह क्या कारण है? तो सोभनी ऋषि के आंगन में यह वाक् आया कि ओहो! वेद मंत्र का जो उच्चारण, वाणी का समन्वय करके, मन और प्राण को एक सूत्र में ला करके करता

है तो पवित्र धाराएं इस वायुमंडल में छा गई हैं और इतनी दूरी में जो प्राणी आ जाएगा, वही पवित्रतम बन जायेगा। वह दैत्य पवित्र हो करके तपस्वी बन गया, वह ऋषि के चरणों में विद्यमान हो गया। ऋषि ने पुनः बारह-बारह वर्ष के अनुष्ठान किये, उस दैत्यराज ने भी अनुष्ठान किये और अनुष्ठान करके तह ऋषि बन गया। उसी ऋषि का नाम साकल्य मुनि बन गया। वह दैत्य न रह करके साकल्य मुनि बन गया।

बेटा! मैं कहां तक इन सूक्ष्म और गम्भीर वाक्यों में तुम्हें ले जाऊं। यह तो एक बड़ा विचित्र जगत है, इसके ऊपर ऋषि-मुनियों ने बहुत अनुसंधान किया। इस वाक् की रचना ऋषि-मुनियों से हुई है। वायुमंडल में मानव की जितनी वाक् शक्ति पवित्र होगी, उतना ही गृह, बालबृहे देखो, वन पर्व हो वह वहीं पवित्रता की धारा में रत्त रहेगा, उसे सत्य ही सत्य दृष्टिपात आता रहेगा। माता अपने पुत्रों को जब सत्यता का उपदेश देती है, पति और पत्नी दोनों गृहों में जब वेद ध्वनि का पठन-पाठन करते हैं तो बाल्यों की निद्रा में उनके श्वासों के द्वार पर भी उन्हीं परमाणुओं की प्रतिभा उनके हृदयों में प्रवेश कर जाती है। मेरे पुत्रो! यह वाक् सदैव से सिद्ध हो गया है कि **मानव को अपनी वाणी में सदैव पवित्र रहना चाहिए।** मानव को अपने में तपस्या का क्रियाकलाप बनाना चाहिए, जिससे मानव अपने जीवन में पवित्र धाराओं में रत्त होता हुआ अपने को पवित्र बनाता रहे, अपनी वाणी को वेद ध्वनि में परिणित करता रहे। इस वेद ध्वनि में ही अपनी ध्वनि को जानता हुआ वह जो ओ३म् रूपी ध्वनि है, उस ध्वनि में वह ध्वनित रहना चाहिये। वह ध्वनि एक शाश्वत है, वह सृष्टि के प्रारम्भ से, वेदमंत्रों के प्रारम्भ की एक धारा है। भूर्भूव में यह सर्वत्र वेदमंत्र गुथा हुआ है तो इसीलिए हमें उस धारा में रत्त हो जाना चाहिए।

आज मैं तुम्हें विशेष चर्चाएं देने नहीं आया हूं। विचार यह देने के लिए आया हूं कि हे मानव! त प्रातःकालीन उस ब्रह्म का याग कर,

तू ब्रह्मयागी बन। ब्रह्मयागी तू उस काल में बनेगा जब तेरी शान्त प्रवृत्ति बन जायेगी। हे मानव! अपनी शुद्ध-विशुद्ध क्रियाओं से निवृत्त हो करके प्रभु के गान में लग जा क्योंकि वही संसार में तेरा जीवन है, वही तेरी धारा है। इसके पश्चात संसार के भिन्न-भिन्न कार्यों में शारीरिक रचना का व्यवधान किया गया है। विचार विनिमय क्या कि मेरे पुत्रो देखो! मैं तुम्हें उच्चारण कर रहा हूं कि प्रत्येक मानव अपने में महान बन करके प्रभु की प्रतिभा का दिग्दर्शन करते हुए ब्रह्मयागी बन जाए। इसके पश्चात द्वितीय कर्म देवपूजा का आता है। हमारे यहां पूजा के भिन्न-भिन्न प्रकार के स्वरूप हमारे वैदिक साहित्य में माने गये हैं। जैसे यह ब्रह्मयाग है, यह उपासना का कांड बन गया है। यह उपासना, अपने को समष्टि से व्यष्टि में ले जाना है। जब मानव समष्टि में चला जाता है तो वह नाना प्रकार की संकीर्णता से दूर हो जाता है, पाप कर्म में मानव की प्रवृत्ति नहीं रहती, वह सदैव अपने में महान बन करके पवित्र बन जाता है।

इसके पश्चात देव पूजा का प्रसंग आता है, इस देव पूजा की चर्चा मैं तुम्हें कल प्रकट करूंगा कि देव पूजा के रूप में कितनी इसकी विचित्र धाराएं हमारे ऋषि-मुनियों ने जानी हैं। तो विचार विनिमय क्या कि जो हमारे यहां ऋषि का कर्म है वह मानवीय धाराओं के आधार पर यह है कि मानव को कैसा बनना है और कैसा बन करके हम जगत में चलें परन्तु नाना प्रकार की जो रूढ़ियां हैं, उन रूढ़ियों में प्रवेश नहीं होना चाहिए। अति रूढ़ियों में अज्ञान आता है। उन रूढ़ियों की चर्चायें मैंने कई काल में तुम्हें की हैं। मेरे पुत्र महानन्द जी ने भी रूढ़ियों की चर्चायें की हैं, मैं भी उन रूढ़ियों को अब बहुत समय से जान गया हूं कि वह रूढ़ि क्या हैं? रूढ़ियां सदैव अज्ञानता से आती हैं, इसलिए अज्ञान नहीं रहना चाहिए। ज्ञान के माध्यम से व्यष्टि और समष्टि में अपने को ले जाना चाहिए। वही उसके विचारों की भूमिका बनती है, वह तपस्या का चरण है।

हमारे यहां अनुष्ठानों का बड़ा वर्णन आता रहता है। मेरे पुत्र महानन्द जी ने एक समय कहा कि वह अनुष्ठान भी एक रूढ़ि बन गया है। अनुष्ठान का अभिप्राय यह है कि वेदमंत्र को ले करके, अपने में किसी वाक्य को ले करके अनुसंधान कर रहे हैं। अनुसंधान करके उसको अनुष्ठान में ला देते हैं। अनुष्ठान का अभिप्राय है कि उसको जानना, जिस वस्तु को हम जानना चाहते हैं, उसको हम जाने और जान करके उसमें पिपासी रह करके जिज्ञासा हो जाए, उसका नाम अनुष्ठान कहलाता है, उससे मानव की आयु दीर्घ बना करती है। जैसे हमने एक वेद मंत्र को लिया है, हमने ओ३म् को लिया है। ओ३म् की तीन मात्राओं को ले करके हम अग्रणीय बने हैं। अब उसका अनुष्ठान करते-करते, अनुसंधान करते-करते अपनी प्रवृत्ति को व्यष्टि से समष्टि में ले गये हैं तो वह हमारा एक अनुष्ठान कहलाता है। मेरे पुत्र महानन्द जी ने मुझे एक समय अनुष्ठान के सम्बन्ध में वर्णन कराया था कि आधुनिक जो जगत है, जहां यह वाणी का प्रवेश हो रहा है, इसमें अनुष्ठानों के भिन्न-भिन्न रूप स्वीकार कर लिए हैं। किसी व्रत्तियों को द्रव्य प्रदान करने का नाम ही अनुष्ठान स्वीकार कर लिया कि यह मेरे नामों का, देखो, वेद मंत्रों का यह जपन करेगा, यह अनुष्ठान स्वीकार कर लिया। परन्तु ऋषि-मुनियों के अनुष्ठानों की जो प्रवृत्तियां थीं वे कितनी विचित्र मैंने वर्णन की हैं।

एक समय मैं बाल्य काल में अपने पूज्यपाद गुरुदेव के द्वार पहुंचा तो उन्होंने वर्षों का एक अनुष्ठान किया था और वह अनुष्ठान क्या था कि वह वेद मंत्रों की ध्वनि को माला पाठ में परिवर्तित करना चाहते थे, उस माला पाठ के उद्गीत को जानना चाहते थे कि उसका प्रादुर्भाव कहां से हुआ है। उस पर अनुसंधान होता रहा, अनुसंधान करते रहे तो पूज्यपाद गुरुदेव का जीवन मुझे स्मरण है कि वह बाह्य जगत को आन्तरिक जगत में ले गए, मस्तिष्क में ले गए जहां नाना प्रकार की ध्वनियां हो रही हैं, प्राण अपनी

गर्जना कर रहे हैं, अपान से मिलान हो करके कौन-सी गर्जना है और उन गर्जना में वह जो ध्वनि ध्वनित हो रही है, उस ध्वनि में क्या रहस्य है? ध्वनियों के रहस्यों को जान करके २४ वर्षों का इस प्रकार का अनुष्ठान किया तो वेद के मंत्रों का आदान उन्हें स्मरण आने लगा। वेदों की ध्वनि मानव को वैसे ही कंठस्थ नहीं होती, यह अनुष्ठान के रूप में होती है, तो यही अनुष्ठान है।

एक मानव यह चाहता है कि मैं अपने द्रव्य को पवित्र बनाना चाहता हूं, मैं अपने गृह को पवित्र बनाना चाहता हूं तो प्रातःकालीन ब्रह्मयाग में परिणित हो जाए और ब्रह्मयाग करता हुआ बाल्य उसका अनुसरण करेंगे, उस गृह में रहने वाले सब उसका अनुसरण करेंगे। तो उसका जो विचार है, वह परमात्मा का महाद्रव्य बन करके सार्थक बन गया है, वह गृह पवित्र बन गया है। देव पूजा करने से, ब्रह्मयाग करने से द्रव्य की पवित्रता हो गई है। इस प्रकार का क्रियाकलाप ऋषि-मुनियों ने मानव के लिये सृष्टि के प्रारम्भ में निर्धारित किया था।

बेटा! यह आज का विचार अब हमारा समाप्त होने जा रहा है। देव पूजा के संबंध में जो याग होता है उसकी चर्चाएं मैं कल कर सकूंगा। आज का विचार हमारा क्या कह रहा है कि हम परमपिता परमात्मा की आराधना करते हुए, देव की महिमा का गुणगान गाते हुए इस संसार सागर से पार हो जाएं। बेटा देखो! अपने को व्यष्टि से समष्टि में प्रवेश कर जाएं, यही हमारा जीवन है, यही हमारी पवित्रता है, यही हमारा ब्रह्मयाग है। मुनिवरो! यह चर्चाएं अब हम समाप्त करने जा रहे हैं। समय मिला तो शेष चर्चाएं कल प्रकट करेंगे, अब वेदों का पठन-पाठन।

अमृतसर

१-८-१९८५

देव पूजा (यज्ञ)-१

देखो मुनिवरो! आज हम तुम्हारे समक्ष पूर्व की भांति कुछ मनोहर वेद मंत्रों का गुणगान गाते चले जा रहे थे। यह भी तुम्हें प्रतीत हो गया होगा, आज हमने पूर्व से जिन वेद मंत्रों का पठन-पाठन किया। हमारे यहां परम्परा से ही उस मनोहर वेदवाणी का प्रसारण होता रहता है जिस पवित्र वेदवाणी में उस महामना मेरे देव की महिमा का गुणगान गाया जाता है। क्योंकि जितना भी यह जड़ जगत अथवा चेतन्य जगत है, उस सर्वत्र ब्रह्मांड के मूल में वह मेरा देव दृष्टिपात आ रहा है। जब मानव अपने में चिन्तन और मनन करने लगता है तो अनुभूतियां होती रहती हैं, प्रभु के भिन्न-भिन्न स्वरूपों का वर्णन करने लगता है। प्रत्येक वेदध्वनि की आभा में उन शब्दों की प्रतिभा का जन्म होता रहता है, जिसकी प्रतिभा अन्तरिक्ष में ओतप्रोत रहती है। विज्ञान परमपिता परमात्मा की महानता का एक प्रतीक माना गया है जिसके ऊपर सृष्टि के प्रारम्भ से लेकर वर्तमान के काल तक नाना प्रकार का वैज्ञानिक और मनन करने वाले पुरुष रहे हैं। वह विज्ञान की उड़ान में उड़ते रहे हैं और मानवता की उड़ान उड़ते रहे हैं, परन्तु वही प्रसंग हमारे समीप आता रहता है।

प्रातःकाल की पवित्र वेला में ऋषि-मुनियों ने यह अनुसंधान किया और यह विचारने लगे कि आगे आने वाला जो यह जगत है, इस जगत में भिन्न-भिन्न प्रकार की धाराओं का जन्म होगा क्योंकि मानव के अन्तर्हृदय में जो आत्मा विद्यमान है इसकी कोई पिपासा होती है और उस पिपासा

को पूर्ण करने के लिए वह अपने प्रिय महान सखा के आंगन में जाने के लिए तत्पर होता है। यदि उसका दर्शन ऊंचा है, वैदिकता से गुथा हुआ है, प्रकाशमय है तो आत्मा की पिपासा महान बन करके अपने में पवित्रतम बन जाती है। इस लिए मानव को जिज्ञासा जागरूक हुई, आत्मचेतना से तरंगों का जन्म हुआ और उन तरंगों में रमण करता हुआ मानव यह विचारता है कि मैं तरंगवादी बन गया हूँ तो उन तरंगों में से नाना प्रकार की आभाओं का जन्म होना प्रारम्भ हो जाता है। मानव यह विचारता रहता है कि मैं अद्यम् बृहे वृणास्वः। यदि उसका मार्ग यथार्थ और प्रकाशमय है तो वह फिर रूढ़ियों में प्रवेश नहीं करता है। वह अपने मनस्तव, अपनी सूक्तियों को और पिपासा को अन्तर्हृदय में ले जाता है और वहां अपना निर्णय कर लेता है कि मैं प्रभु के राष्ट्र में हूँ और यह प्रभु का अनन्तमयी राष्ट्र है और मैं भी विचार विनिमय करता हुआ अन्त में मौन हो जाऊंगा तो यह रूढ़ियों से उपरामता के विचार कहे जाते हैं। तरंगें बन जाती हैं परन्तु जब तक उसका पथ ऊर्ध्वा में नहीं है तो आत्मा की पिपासा बनी रहती है कि जहां से मेरा विच्छेद हुआ है, मैं वहां जाना चाहता हूँ। यदि पथ विचित्र नहीं है, ईश्वर के पारांग नहीं है तो मुनिवरो! वह पथभ्रष्ट हो जाता है और उस मार्ग को चल करके उसकी रूढ़ियां बन जाती हैं और वह रूढ़ियां मानव समाज के लिए हानिप्रद होती हैं। उसके मूल में केवल चिन्ता आ जाती है, चिन्ता जागरूक हो जाती है। प्रारम्भ में नहीं होती, परन्तु जब रूढ़ियां उपलब्ध हो जाती है तो अन्त में उसका परिणाम यही होता है। सृष्टि के प्रारम्भ से ले करके वर्तमान के काल तक प्रायः ऐसा होता रहा है।

मुनिवरो! विचार क्या कि ऋषि-मुनियों ने यह विचारा कि मानव की आत्म पिपासा की शान्ति के लिए कोई न कोई याग की रचना की जाए। उन्होंने याग की रचना के ऊपर चिन्तन किया और विचारा। ब्रह्मयाग

की चर्चाएं तो हम इससे पूर्व काल में कर रहे थे, उसका सूक्ष्म परिचय हमने दिया है। ब्रह्मयाग के पश्चात आचार्यों ने इस सृष्टि के प्रारम्भ में आत्म पिपासा को शान्त करने लिए अन्तर्हृदय में जो याग हो रहा है, उस याग को वाह्य जगत में लाने का उन्होंने प्रयास किया और जब उस याग को अन्तर्जगत से वाह्य जगत में लाए तो उन्होंने विचारा कि यह याग तो देवपूजा है। इसके ऊपर विचार किया कि इसे देवपूजा क्यों कहते हैं? **देवताओं का पूजन करना हमारा कर्त्तव्य है।** हमारे यहां दो प्रकार के देवताओं का वर्णन वैदिक साहित्य में आता रहता है। एक वह जो देवतम ब्रह्मवाहा, जिसे हम जड़ देवता कहते हैं और द्वितीय देवता चेतन्यवत माने गये हैं। दोनों प्रकार के देवताओं की पूजा करने के लिए हमें अनुसंधान करना होगा। अनुसंधान भी योग पूर्वक, हमारा गम्भीर मनन और चिन्तन इस सम्बन्ध में होना चाहिए।

प्राचीन काल में, अतीत के काल में हमारे यहां ऋषि-मुनियों ने देवपूजा के लिए बहुत से विचित्र वाक् हमारे समीप दिये हैं। न्यौदा में एक मंत्र कहता है कि देवां ब्रह्म अग्नि रूद्रो भासव अग्नि रूद्रो भासव प्रही वाच्चम् ब्रहे वाचन्नमः, वेद का वाक्य कहता है कि अग्नि देवताओं के रूप में परिणित रहती है क्योंकि यह प्रत्येक परमाणु का विभाजन करती रहती है। कोई भी परमाणु हो, कोई भी तरंगें हों उनका विभाजन करना इस अग्नि का कर्त्तव्य है। मानव के शरीर में भिन्न-भिन्न प्रकार के परमाणुओं की उपलब्धियां होती रहती हैं, तरंगों की उपलब्धियां होती रहती हैं परन्तु अग्नि उनका विभाजन करती रहती है। वास्तव में जब हम दार्शनिक विचारों में पहुंचते हैं तो विभक्त क्रिया जहां अग्नि करती है, वहां मनस्तव भी किया करता है। तो विचारने से यह प्रतीत हुआ है कि यह जितना प्रकृतिवाद है, इस प्रकृतिवाद में विभक्त क्रियायें हो रही हैं। चाहे अन्तरिक्ष में विभक्त हो जाओ, पृथ्वी के गर्भ में चले जाओ, द्यौ में प्रवेश कर जाओ, परन्तु मध्य में भी द्यौ ही प्रतीत होता है और पृथ्वी के अन्तिम छोर में भी द्यौ ही प्रतीत होता

है। द्यौ से ही प्रकाश ले करके एक अनुपम प्रकाश होने लगता है, ऊर्ध्वा उस द्यौ से हमें प्राप्त होती है और द्यौ को ले करके हम संसार में गमन करते हैं, वही हमारी एक आभा कहलाती है।

यह याग है जिसे हम देवपूजा कहते हैं। देवपूजा के दो प्रकार के स्वरूप, एक चेतन्यता और एक जड़ता हमारे समीप हैं। जड़ में सामान्यता है और चेतन्यता विशेषत्व माना गया है। विचारने से प्रतीत हुआ कि देवपूजा करने वालों ने जब अग्नि में साकल्य प्रदान किया तो इसके ऊपर बहुत अनुसंधान किया। नाना प्रकार की चित्रावलियों का भी निर्माण हुआ है, नाना प्रकार के यंत्रवेत्ताओं ने, वैज्ञानिकों ने यंत्रों का निर्माण किया। द्यौ लोक केवल याग और देवपूजा कर्म करने से सजातीय बनता है। द्यौ की जितनी भी उपलब्धियां हैं, वह सब देव पूजा में हैं क्योंकि यदि हम शुभ कर्म नहीं करेंगे तो द्यौ का निर्माण भी नहीं हो सकेगा। द्यौ का निर्माण तो सत्यता से परिपूर्ण रहता है।

मेरे पुत्रो! आचार्यों ने कुछ ऐसा स्वीकार किया है, विज्ञानवेत्ता ने भी, यौगिक आचार्यों ने भी ऐसा कुछ माना है कि जब हम देव पूजा करते हैं तो साकल्य अग्नि में परिणित करते हैं। दोनों प्रकार के देवताओं की पूजा हो रही है, वेद मंत्रों का उद्गीत गाया जा रहा है। हमारे आचार्यों ने परम्परागतों से ही देवपूजा को मानव जीवन के नित्यप्रति क्रियाकलाप का एक अंग बनाया। इस अंग के बन जाने से उन्होंने कहा कि वेद का पठन-पाठन होना चाहिए, अग्नि तुम्हारे समीप होनी चाहिए, उसमें तुम देवताओं का अग्रहो ब्रणाम् ब्रहे। मुनिवरो! हम वेद का पठन-पाठन करें, ऐसा उन्होंने क्यों कहा? इस लिए क्योंकि वेद के पठन-पाठन से वेद की जो पवित्र ज्ञान-विज्ञान से पूर्ण विद्या है, उसकी रक्षा होती है। हमारे यहां परम्परागतों से ही कोई ऐसा विधान नहीं माना है कि किसी वस्तु का पारायण किया जाए। अनुष्ठान

स्वीकार किये हैं, अनुष्ठानों में मानव लगा रहा है परन्तु पारायणों में नहीं पहुँचा। पारायणों का कहीं ऐसा कोई नियम भी नहीं आता। परन्तु देखो, विचारने से यह प्रतीत हुआ कि हमारे यहां ऋषि-मुनि पारायण उस रूप में करते थे जिससे उसकी रक्षा हो जाए। उस विद्या की रक्षा होना बहुत अनिवार्य है। वह उपासना में परिणित होने वाली पवित्र देवी है, जिसके ऊपर हम अपने जीवन को ले जाएं और वेद का नित्यप्रति पठन-पाठन करें क्योंकि वेदध्वनि से ज्ञान और विज्ञान की उपलब्धियां होती रहती हैं और अग्नि के आश्रित हो करके जब ध्वनि अन्तरिक्ष में गति करती है तो परमाणुओं को ले करके वह धाराएं अन्तरिक्ष में ओतप्रोत हो जाती हैं जिनसे ऋषि-मुनि यंत्र का निर्माण करते थे। उन्होंने इसकी जानकारी दी है, इसको जानने के लिए वह तत्पर रहे हैं।

मुनिवरो! विचार क्या कि मैं देवपूजा के सम्बन्ध में अपना यह विचार दे रहा था कि दोनों चेतन्य और जड़वत देवताओं की पूजा होनी चाहिए। मुनिवरो! जड़ कौन हैं? जड़ जैसे पार्थिव्य तत्व, जलवर्तमः, अग्नि तेजोमयी, वायु और अन्तरिक्ष, ये पंचमहाभूत कहलाते हैं। इन पंच महाभूतों के आंगन में ही तो नाना प्रकार के साकल्य को लाया जाता है। यह जड़वत देवता कहलाते हैं। जब हम विशुद्ध रूप से अपनी वाणी के द्वारा उद्गीत गाते हुए अग्नि में साकल्य अर्पित कर देते हैं तो यह अग्नि सब देवताओं को उसे प्रदान कर देती है। अग्नि की नाना प्रकार की धाराएं हैं जो शब्द को ले करके द्यौ लोक में प्रवेश करा देती हैं। उसी शब्द को ले करके, अन्तरिक्ष में ओतप्रोत हो करके द्यौ का निर्माण हो जाता है। मुनिवरो! आगे जब उन्होंने वेद ध्वनि को प्रसारित किया तो यह निश्चय हुआ कि शब्द नित्य द्यौ में प्रवेश करता रहता है, द्यौ में ही ओतप्रोत रहता है। तो इस प्रकार उन्होंने याग के सम्बन्ध में, देवपूजा के सम्बन्ध में अपना वक्तव्य दिया कि पंच महाभूत का पवित्र होना बहुत अनिवार्य है और यह पवित्र जब होगा

जब प्रत्येक गृह में याग होगा, प्रत्येक गृह में जब वेदध्वनि का प्रसार होगा। वेद की ध्वनि होनी चाहिए क्योंकि हमारे आचार्यों ने वेद को ईश्वरीय ज्ञान माना है। वेद केवल एकोकी प्रकाश है, इस प्रकाश के लिए मानव अपने अन्तःकरण को उस वेदध्वनि से समन्वय करता हुआ अपने अन्तःकरण की प्रतिभा को जन्म देता है।

मुनिवरो! अग्नि को प्रदीप्त करके जब हम वेद की ध्वनि का प्रसार करते हैं, वेदध्वनि के ऊपर अपना चिन्तन प्रारम्भ करते हैं तो वह वेदध्वनि देवताओं का एक दूत स्वीकार करके ही अग्नि के रूप में प्रवेश हो जाती है। अग्नि के परमाणु, शब्द को ले करके द्यौ लोको में जाते हैं। द्यौ से ऊर्जा ले करके सूर्य अन्तरिक्ष में गति करता है। ऊर्जा को ले करके मेघ मंडलों की उत्पत्तियां हो जाती है तो इन्द्र और वकासुर, दोनों का संग्राम होता है। संग्राम होते ही वृष्टि प्रारम्भ होती है तो पृथ्वी के गर्भ में जो नाना प्रकार के धातु पिपाद का निर्माण हो रहा है, वह उसमें सहायक बनता है। उस शीतलता का पृथ्वी के गर्भ में विद्यमान अग्नि भंडार से जब समन्वय होता है तो देखो, पृथ्वी के गर्भ से नाना प्रकार के व्यंजनों का जन्म होता है। नाना प्रकार के अन्न इत्यादियों का, रत्नों का, जितनी भी संसार की धातुएं हैं, जो मानव के जीवन में सार्थक होती हैं, उस सबकी उपलब्धियां हो जाती हैं। विचार विनिमय क्या कि आचार्यों ने देवयाग से ही द्यौ के निर्माण की उपलब्धि स्वीकार की है।

मुनिवरो! आगे आचार्य कहते हैं कि ब्रह्मवाचा यागाम् ब्रह्मे, चन्द्रमा सोम देता है, अमृत को बहाता रहता है, वह सोममयी कहलाता है। सोम बना करके उसका हम अपने में उपयोग करते हैं, आयुर्वेदाचार्य इसके ऊपर अनुसंधान करते हैं। चन्द्रमा सोम है, शीतल है, यह नाना प्रकार की वनस्पतियों को अमृत प्रदान करने वाला है, प्राणसत्ता को उत्पन्न करने वाला है। वही

प्राण स्वरूप बन करके नाना प्रकार की वनस्पतियों में ओतप्रोत हो करके वह रसों की उपलब्धियां कर देता है। मानव की वाणी से इसका घनिष्ठ सम्बन्ध रहता है। वही चन्द्रमा सोम है जो शीतलता में प्रवेश करता हुआ, जलों की धाराओं में रत्न रहता है, उसका अमृत बना देता है। आचार्यजनों ने नाना प्रकार के व्यंजनों की धाराओं को ले करके ही चन्द्रमा की धारा को अपने में समन्वय करने का प्रयास किया है। तो यह हमारे यहां जड़वत् देवताओं का पूजन हुआ। उसमें सत्ता प्रदान की गई, साकल्य और वह श्रद्धा जब घृत के रूप में देवताओं के समीप पहुंची तो वही तो आनन्दवत् कराके हमारे जीवन को ऊंचा बना गई।

अब चेतन्य देवता पुरोहितजन विद्यमान हैं। पुरोहित वह होता है जो यह चाहता है कि यजमान की ऊर्ध्वा गति हो, यह ऊर्ध्वा में गमन करने वाला हो। पुरोहित उसे कहते हैं जो गृहस्वामी-गृह स्वामिनी के हृदयों में अपने श्रद्धामयी, करुणामयी और उपासनामयी वेद के मंत्र को ले करके, उसके भावों को उनके हृदय में प्रवेश करा देता है। जब उनके हृदयों में वह प्रवेश हो जाते हैं तो उनके जीवन की भूमिका विचित्र बन जाती है और वह अपने में यह स्वीकार करते हैं कि वास्तव में हमारा यह कर्तव्य है। जब वह उपदेश देता है तो यजमान का अन्तर्हृदय पवित्र हो जाता है। मैंने तुम्हें कई काल में वर्णन करते हुए भी कहा है कि देखो, राजा अश्वपति के यहां पति-पत्नी दोनों विद्यमान हो करके प्रातःकालीन याग में परिणित होते थे। रैनकेतु ऋषि महाराज उनके पुरोहित थे और वे उनके हृदयों को पवित्र बनाने की चेष्टा करते रहते थे। महाराजा अश्वपति को वे कहा करते थे कि हे राजन्! तुम उस अन्न को ग्रहण करो जिस अन्न के ग्रहण करने से तुम्हारा अन्तरात्मा पवित्र बन जाए। तुम्हारा अन्तरात्मा विचित्र बन करके तुम राष्ट्र में कुशल बन करके, कौशलता को प्राप्त करो। हमारे यहां भगवान् मनु ने राष्ट्र की एक भूमिका बनाई है कि प्रजा जब अपने कर्तव्य से विहीन

हो जाए तो राजा का निर्वाचन होना चाहिए। राजा का जब निर्वाचन होता है तो राजा को पुरोहित यह कहता है कि हे राजन्! तू उस अन्न को ग्रहण कर जिससे तेरे हृदय में विडम्बना न आ जाए क्योंकि राष्ट्र का जो एक मद है यह बड़ा विचित्र है, यह महापुरुषों को भी नष्ट कर देता है। राष्ट्र के द्रव्य की इस प्रकार की प्रतिभा है कि उससे मानव के हृदय में करुणा न आ करके उसमें कठोरता का भाव स्थापित हो जाता है। राजा के हृदय में करुणा होनी चाहिए। उसको करुणा जब आएगी जब उसका अन्न पवित्र होगा। अन्न के पवित्र होने पर ही राजा ऊंचा बन सकता है। महाराजा अश्वपति और उनकी गृह स्वामिनी, दोनों इस पृथ्वी के गर्भ से नाना प्रकार के पुरुषार्थ करते हुए अन्न को एकत्रित करके उस अन्न का पान करते थे और उसको पान करने से राजा का हृदय पवित्र रहता था। राष्ट्र को यह उपदेश देते थे कि हे प्रजाओ! तुम अपने कर्तव्य का पालन करो और वह कर्तव्य यही था कि प्रत्येक गृह में ऋषि-मुनियों ने तुम्हारे लिए कुछ रचनात्मक, क्रियात्मक क्रियाकलाप करने के लिए उपदेश दिये हैं, उनको पुनः से स्वीकार करो। पुनः तुम्हारे प्रत्येक गृह में याग होने चाहिए, सुगन्धि होनी चाहिए, प्रत्येक गृह में देवताओं का पूजन होना चाहिए।

प्रत्येक गृह में गृह स्वामी और गृहस्वामिनी, बाल्य-ब्रह्मचारी आचार्य के समीप विद्यालय में, जब अपने में याज्ञिक और देवपूजा करने वाले बनेंगे तो यह समाज पवित्र बन करके जैसा प्रभु ने यह जगत रचाया है, उसी प्रकार स्वभाविक अपने-अपने क्रियाकलापों में यह समाज परिणित होता रहेगा, वायुमंडल पवित्र बना रहेगा, समय पर वृष्टि होगी। प्रत्येक क्रियाकलाप में प्रकृति का होना अनिवार्य है। यह उसी काल में होता है जब प्रत्येक मानव के, प्रत्येक प्राणी के हृदय में देवपूजा करने की भावनाओं का जन्म होगा। जब देवताओं की पूजा नहीं होगी तो देवत्व कैसे प्राप्त होगा? देवताओं की पूजा का एक ही माध्यम है कि देवपूजा करें। देवपूजा का अभिप्राय यह

है कि हम प्रातःकालीन याज्ञिक बनें। जैसे हम ब्रह्मयाग करते हैं इसी प्रकार देवपूजा भी अनिवार्य है। देवताओं के पूजन में पुरोहित अपने यजमान को चाहता है कि यह पवित्र बन जाए।

महाराजा अश्वपति अपने में पुरुषार्थ करते रहते थे। पुरुषार्थ से अन्न को उत्पन्न करके उन अन्न को पान करने से तरंगों का जन्म होता है, वही तो मानव के मस्तिष्क का निर्माण करता है। मस्तिष्क का निर्माण अन्न के द्वारा होता है, इसके लिए हमारा अन्न पवित्र होना चाहिए। मैंने बहुत पुरातन काल में यह वाक् देते हुए कहा था कि संसार में मानव के द्वारा जब अन्न की महान उपलब्धि होगी तो उसके हृदय में महानता वाली तरंगों का जन्म होगा और वायुमंडल का, गृह का निर्माण होगा। इसके ऊपर वैज्ञानिकों ने भी बहुत सा अनुसंधान किया। आज मैं विज्ञान के युग में तो तुम्हें नहीं ले जाऊंगा, विचार केवल यह कि हमारे यहां प्रातःकालीन देवयाग होने चाहिए, वेदध्वनि होनी चाहिए, जिससे वह ध्वनि हमें देवत्व प्राप्त कराये।

चेतन्य देवता हमारे पुरोहित जन हैं, आचार्य जन, गुरुजन हैं जो ऊर्ध्वा मार्ग में ले जाते हैं। विद्यालय को सजातीय बनाना है, विद्यालय को ऊंचा बनाना है तो प्रातःकालीन ब्रह्मचारी और आचार्यजन देवपूजा में लग जाएं। आचार्य जब याग के पश्चात ब्रह्मचारियों को अपने क्रियाकलाप के सम्बन्ध में उपदेश देता है तो वह अपनी विचारधारा को प्रवाहित कर रहा है। वेद मंत्र यह कहता है कि जो बाल्यों के हृदय में आचार्यों की एक भावातीत धारणा की जाती है, उसी से तो ब्रह्मचारी ऊंचा बनता है। विचार विनिमय क्या कि प्रत्येक गृह में, प्रत्येक विद्यालयों में जब याग की उपलब्धि हो जाती है तो एक दूसरे के रक्त की पिपासा का प्रसंग ही नहीं बन पाता। रक्त की पिपासा जब होती है जबकि मानव अपने ज्ञान से शून्य हो जाता है। वेद ज्ञान से विमुख जो पथिक बन जाता है, वह रूढ़िवाद बन करके

देखो, राष्ट्र की प्रतिभा में वह ओतप्रोत हो करके, वहां से रक्त की क्रान्तियां प्रारम्भ होती हैं। क्यों होती हैं? क्योंकि ब्रह्मचारी जन आचार्य कुल में आचार्यों का, देवताओं का पूजन नहीं कर रहे हैं। पूजन प्रारम्भ करने के लिए आचार्यजन अपने देवताओं का पूजन करें और ब्रह्मचारी अपने देवता का पूजन करें, तो मुनिवरो! अपने-अपने में देवत्व बन करके पवित्र बन सकते हैं।

राष्ट्र और समाज दोनों एक संग तुलना में आ करके एक दूसरे को महान प्रीति की दृष्टि से पान करने वाला जब समाज हो जाता है तो देखो, राष्ट्रीयता का अस्तित्व नहीं रहता है। राष्ट्रीयता का अस्तित्व जब ही तक है जब तक अपना महत्व स्वीकार कर रहा है। जब तक मानव का निर्माण नहीं हो रहा है, जब तक ऋषि-मुनियों की वार्ता को अपनी क्रिया में नहीं ला रहा है तभी तक राष्ट्र का अपना महत्व माना गया है और जब अपने कार्यों में मानव रत्न रहता है, देवपूजा में रत्न रहता है, क्रियाकलापों में रत्न रहता है, अपने कर्तव्यवाद की वेदी को ऊंचा बना लेता है तो वहां देखो, ऋषि-मुनियों के समीप राजा जाता है और यह कहता है कि भगवन्! मैं अपने राष्ट्र को ऊंचा बनाना चाहता हूं। ऋषि-मुनियों का जो जीवन है, वह राष्ट्र से ऊर्ध्वा में गति कर गया है, इसीलिए राजा उनके चरणों में विद्यमान हो करके ऊंची शिक्षा को प्राप्त करता है।

मेरे पुत्रो! मैं विशेषता में तुम्हें नहीं ले जा रहा हूं, विचार केवल यह उच्चारण करने के लिए आया हूं कि देवत्व प्रमाणम् वृहे लोकाम् ब्रह्मवाचाम देवाः, हम प्रातःकालीन ब्रह्मयाग के पश्चात् देवपूजा करने वाले बनें। देवपूजा का अभिप्राय यह है कि हम दोनों प्रकार के देवताओं का पूजन कर रहे हैं, जड़ देवताओं का भी और चेतन्य देवताओं का भी। चेतन्य देवता हमारे गुरुजन हैं, पितृजन हैं। जब ब्रह्मचारी प्रातःकालीन देवयाग करता है तो देवयाग में अपने पितृ की पूजा करता है, पिता भविताम् देवाम्, देवताजनों

की पूजा करता है- जो भी देवता है, आचार्यजन वेद के पठन-पाठन करने वाले, वेद के भिन्न-भिन्न प्रकार के रूपों में, स्वरों में गान गाने वाले हैं। यहां मुझे स्मरण आता रहता है कि एक समय मेरे पूज्यपाद गुरुदेव बोले कि चलो! आज तो मगध राष्ट्र में भ्रमण करके आते हैं। भ्रमण करते मगध राष्ट्र में जब कबन्धि व्रेतकेतु ऋषि के द्वार पर पहुंचे तो उन्होंने स्वागत किया और आसन दे करके वन्दना की। विराजमान हो कर पूज्यपाद गुरुदेव ने यह प्रश्न किया कि हे ब्रह्मे! कबन्धि, क्या कर रहे हो? उन्होंने कहा कि प्रभु! मैं देवयाग के लिए चिन्तन कर रहा हूं, देवयाग करना चाहता हूं। पूज्यपाद ने कहा कि क्या देवयाग तुम्हें नहीं आता। उन्होंने कहा कि मैं देवयाग जानता तो हूं परन्तु उसे क्रिया में लाना चाहता हूं, उसके ऊपर मैं कुछ अनुष्ठान करना चाहता हूं। प्रभु! यह जो मैं देवयाग करने जा रहा हूं इसका देवता कौन है? पूज्यपाद गुरुदेव ने कहा कि जिस देवयाग को आप करना चाहते हैं, उसका देवता अग्नि है। उन्होंने कहा कि भगवन्! एक समय कात्यांग के गृह में मेरा वास हुआ था। कात्यांग से मैंने यह प्रश्न किया तो उन्होंने देवता सूर्य वर्णन किया था और आप अग्नि का वर्णन कर रहे हैं तो प्रभु! मैं कौन से देवता को स्वीकार करूं? गुरुदेव बोले कि हे कबन्धि! सूर्य और अग्नि दोनों एक ही तुलना में स्वीकार किए जाते हैं, क्योंकि अग्नि की सूक्ष्म धारा से द्यौ का जन्म होता है और सूर्य द्यौ से प्रकाश ले करके प्रकाशित है, वह भास रहा है।

कबन्धि ने कहा कि धन्य है प्रभु! मेरी शंका का निवारण हो गया है परन्तु भगवन्! मैं एक वाक् और जानना चाहता हूं कि हे प्रभु! यह जो मैं याग करने जा रहा हूं उसका उद्गाता कौन है? तो मेरे पूज्यपाद गुरुदेव ने कहा कि यह जो तुम देवयाग करने जा रहे हो इसका उद्गाता वायु है, वायु ही उद्गीत गाती है। मानव के हृदय में जब प्राण और मन, दोनों का समन्वय होता है तो उसके पश्चात् उद्गीत गाया जाता है तो वह उद्गाता

बनता है। उन्होंने कहा कि प्रभु! आपका वाक्य यथार्थ है परन्तु एक समय मैं रेणकेतु राष्ट्र में पहुंचा था तो उनके यहां श्वेता नामक एक ऋषि वास करते थे। मैंने यह वाक् जब श्वेता ऋषि से कहा तो उन्होंने वर्णन करते हुए यह कहा था कि इसका उद्गाता तो वाणी है। आपने वायु, प्राण और मन को कहा है, मैं यह कैसे स्वीकार करूं?

मेरे पूज्यपाद गुरुदेव ने कहा कि हे कबन्धि! क्या तुम नहीं जानते हो? अब मैं तुम्हें वर्णन करना चाहता हूं कि वायु गति है। वायु, प्राण का प्रतिनिधित्व करने वाला है। प्राण का मन से, जड़वत से जब सन्निधान हुआ तो चित्त का मंडल बना और चित्त के मंडल बनते ही उसका समन्वय आत्मा से होता है। आत्मा में जा करके संस्कारों की उपलब्धियां होती हैं। संस्कार जब जागरूक होते हैं तो उसकी उपलब्धि हो करके उससे वही चित्त मंडल बना। मन और प्राण दोनों का समन्वय होते ही वाणी में गति प्रारम्भ हो जाती है। इसलिए जो उन्होंने कहा है, वह भी यथार्थ है और जो हमने उच्चारण किया है वह विस्तार से है। तो इसीलिए वाणी, मन और प्राण दोनों को ऊर्ध्वा में ले करके उद्गीत गाती है, उद्गान गाती रहती है। यज्ञशाला में देखो, देवयाग में, उद्गाता उद्गीत गाता है और जब उससे प्रश्न करते हैं कि तुम उद्गीत क्यों गा रहे हो, उद्गाता क्यों बन गये हो तो वह कहता है कि मैं यजमान की वाणी को पवित्र बनाना चाहता हूं। तो वह वायु प्राणम् ब्रहे, वह मनस्तव, प्राणत्व और चित्त के मंडल को ले करके, वह आभा में नियुक्त हो करके, अभ्युदय हो करके, वाणी से उसका मिलान होता है। जैसे उद्गाता की वाणी पवित्र है, ऐसे ही स्वाहा देने वाले यजमान की वाणी पवित्र हो जाती है।

जब यह वाक् उन्होंने पान किया तो वह प्रसन्न हो गये। कबन्धि ने कहा कि प्रभु! मैं यह जानना और चाहता हूं कि इस यज्ञशाला में यह

जो अध्वर्यु बना हुआ है, यह कौन है? उन्होंने कहा कि यह अध्वर्यु आपो है, यह आपो कहलाता है। आपोमयी सर्वत्रता का अध्वर्यु अप्रतोभागाम् वृहे नौदवृणीमस्तहा, यह जो सोम है, यह जो आपो है, यह आपो ही अध्वर्यु बना हुआ है, यही आपो है जो यजमान के वाणीब्रह्मः उसको भी अपने में सींचता रहता है। किसी काल में साकल्य को ले करके अग्नि जो दूषित रूपों में रक्त रहने लगती है, उसको भी यह शोधन करता है तो यह अध्वर्यु कहलाता है। कबन्धि ने कहा कि प्रभु! एक समय मैं महर्षि साकल्य मुनि के द्वार पर पहुंच गया था। मैंने जब यह प्रश्न किया कि महाराज यज्ञशाला में, देवपूजा में एक अध्वर्यु कहलाता है, यह कौन है तो उन्होंने भगवन्! अध्वर्यु जल को नहीं, उन्होंने पृथ्वी को अध्वर्यु कहा है। प्रभु! मैं आपके वाक्य स्वीकार करूं या साकल्य मुनि के वाक्यों को स्वीकार करूं। भगवन्! मुझे यथार्थ उच्चारण कीजिए।

मेरे पूज्यपाद गुरुदेव ने कहा कि वह याज्ञिक थे, यज्ञ के मर्म को जानते थे। मैं सर्वांग तो नहीं जानता हूं परन्तु जितना जानता हूं, उतना उच्चारण करूंगा। अध्वर्यु का अभिप्राय यह है कि अध्वर्यु द्रव्य का स्वामी कहलाता है। जितना द्रव्य है, जितना साकल्य है इसका पिंड बनाने वाला जल है। जितना भी पिंड आकार बनता है, वह पिंड बनाने वाला जल है, इसलिए जल हमारे लिए अध्वर्यु कहलाता है। वैदिक साहित्य में अध्वर्यु जल को कहते हैं और जब पृथ्वी जल के समीप आती है तो पृथ्वी के परमाणुओं का ही पिंड बनता है। जब तक वह आपो की प्राण सत्ता पृथ्वी के परमाणुओं में परिणित नहीं होती तब तक देखो, किसी वस्तु का पिंड नहीं बनता। माता के गर्भ स्थल में भी जो मानव पिंड बनता है, वह भी इसी रूप में बनता है, बाह्य जगत में पिंड बनता है तो वह भी इसी रूप में बनता है। पिंड द्रव्य बन करके साकल्य बन जाता है, साकल्य बना करके वह जो अध्वर्यु है, वह होताओं को साकल्य प्रदान करता है और वही साकल्य अग्नि में

प्रवेश करता है। अग्नि उसकी पुनरुक्तियां देखो, उसे सूक्ष्म बना देती है परन्तु पिंड का जो मौलिक रूप है, आपो का जो मौलिक रूप है, उसको अग्नि शांत नहीं कर सकती। वह परमाणुओं के रूप में, तरंगों के रूप में प्रत्येक काल में बना रहेगा।

ऋषि ने कहा कि प्रभु! यह मैंने स्वीकार कर लिया परन्तु जो पृथ्वी के लिए कहा है? गुरुदेव बोले कि मैं उसका उत्तर दे रहा हूं। पृथ्वी के परमाणु, गुरुत्व का आपो के बिना पिंड नहीं बनेगा। बिना आपो के यह पृथ्वी व्यंजनों वाली नहीं बन सकती, यह आपो ही तो वरुण कहलाता है, यही तो अन्न का भंडार है। जितना भी संसार का अन्नाद है, प्राणी मात्र है देखो, उस सबका अध्वर्यु वरुण माना गया है, वह आपो माना गया है। वह आपो ही प्राण के रूप में परिणित रहता है। कृषक जब पृथ्वी के गर्भ में बीज की स्थापना कर देता है तो वह आपोमयी ही बीज को पवित्र करके अन्न उत्पन्न करता है। एक को मानव पान करता है, एक को पशु पान करता है। उसी को पान करके पशु दुग्ध देता है और मानव ओज की और तेजों की उत्पत्ति करता है। वह जो वरुण है, वही आपो है। वही आपो मुनिवरो! मानव के आसन के रूप में और ओढ़न के रूप में भी रहता है। इसलिए यह अध्वर्यु कहलाता है, यह मानो संसार का अध्वर्यु है। जो याग को अध्वर्यु है, वही संसार का अध्वर्यु है।

कबन्धि ने पूज्यपाद गुरुदेव के चरणों की वन्दना की और कहा कि धन्य है प्रभु! आपने मुझे जो निर्णय कराया है। मेरा हृदय स्वच्छ बन गया है, क्योंकि वेद का ऋषि कहीं वेदमंत्रों में यह कहता है कि जब तक मानव को याग नहीं करना चाहिए जब तक वह शंकाओं से दूरी न हो जाये। किसी प्रकार का अन्तर्द्वन्द्व नहीं रहना चाहिए, शंका नहीं रहनी चाहिए। मानव शंका रहित हो करके ब्रह्मवेत्ता बने, शंका रहित ही याज्ञिक

बनता है तो इसीलिए आज मेरा हृदय प्रसन्न हो गया है। बहुत समय से मैं याग नहीं कर रहा था। बाल्य काल में करता था, मुझे शंकाएं बनीं, मैंने याग समाप्त कर दिया कि जब तक मैं शंका रहित नहीं होऊंगा तब तक याग नहीं करूंगा। मेरी शंका भगवन्! आपने निवारण की हैं। तो प्रभु! यह मैंने स्वीकार कर लिया है कि आपो ही अध्वर्यु माना गया है।

ऋषि यह वाक् कह करके शान्त हो गये। कबन्धि ने कहा कि सम्भवि लोकाम् हिरण्यम्वृथे ब्रह्मा वाचम सम्भवा, वह सम्भूति लोकाहिरण्यवृथा, वेद के आचार्य कबन्धि ने यह कहा कि प्रभु! अब मैं यह और जानना चाहता हूं कि इस देवयाग में यजमान का क्या स्थान है? यजमान क्यों विशेषता में परिणित रहता है कि उसकी वाणी को पवित्र बनाया जाता है। यह वाक् श्रवण करके पूज्यपाद गुरुदेव मगन होने लगे और कहा कि कबन्धि! तुम इतना भी नहीं जानते? उन्होंने कहा कि प्रभु! मैं कुछ जानता हूं, कुछ मेरे हृदय में शंका बनी रहती है। गुरुदेव ने कहा कि यह जो यजमान है, यह त्रिपति कहलाता है, यह आत्मस्वरूप है क्योंकि आत्म ब्रह्म वाचाः यजमान के साथ आत्मा का सम्बन्ध आता है। जब सृष्टि का प्रारम्भ होता है तो सृष्टि के प्रारम्भ में तीन ही तो पदार्थ होते हैं, जड़वत्, चेतनवत् और महाचेतनवत्। जब सृष्टि का प्रादुर्भाव होता है तो वह जो परमपिता परमात्मा हैं वह ब्रह्मा बन करके ज्ञान की धाराओं का रूपान्तर करते रहते हैं। आत्मा उस काल में यजमान बनता है और परमात्मा के सन्निधान मात्र से जड़वत् प्रकृति के परमाणु अपने-अपने स्वभावों में जागरूक हो जाते हैं। रचना करने वाला रचना में रत्त हो जाता है। जब इस प्रकार की प्रतिभा अग्रणीय बन जाती है तो यह आत्मा यजमान के स्वरूप में रत्त रहता है। आत्मा के द्वारा कोई भी संस्कार नहीं जाना चाहिए, इसलिए साकल्यों को, द्रव्यों को ले करके यजमान की वाणी को पवित्र बनाया जाता है।

मेरे पुत्रो देखो! आज का विचार यह है कि हम परमपिता परमात्मा की आराधना करते हुए देवपूजा में रत हो जाएं। देवपूजा के सम्बन्ध में बेटा! बहुत से वाक् कल हम और उच्चारण करेंगे। आज के वाक् उच्चारण करने का अभिप्राय यह है कि हम परमपिता परमात्मा की आराधना करते हुए, देव की महिमा का गुणगान गाते हुए इस संसार सागर से पार हो जाएं। यह आज का हमारा वाक्य अब समाप्त होने जा रहा है, समय मिलेगा तो हम शेष चर्चाएं कल प्रकट करेंगे। आगे के कुछ विचार रह गये हैं, उनको कल उच्चारण करेंगे, अब वेदों का पठन-पाठन।

अमृतसर

२-८-१९८५

देव पूजा (यज्ञ)- २

देखो मुनिवरो! आज हम तुम्हारे समक्ष पूर्व की भांति कुछ मनोहर वेद मंत्रों का गुणगान गाते चले जा रहे थे। यह भी तुम्हें प्रतीत हो गया होगा आज हमने पूर्व से जिन वेद मंत्रों का पठन-पाठन किया। हमारे यहां परम्परागतों से ही उस मनोहर वेद वाणी का प्रसारण होता रहता है जिस पवित्र वेदवाणी में उस मेरे देव परमपिता परमात्मा की महिमा का गुणगान गाया जाता है। क्योंकि जितना भी यह जड़ जगत अथवा चेतन्य जगत हमें दृष्टिपात आ रहा है इस सर्वत्र ब्रह्मांड के मूल में वह मेरा देव दृष्टिपात आ रहा है, जो सर्वज्ञ है। परमपिता परमात्मा की जो महती है अथवा उसका जो वर्णन है, हमारे यहां ऋषि-मुनियों के क्षेत्रों में प्रायः उनका बड़ा महत्व रहा है परन्तु आज का हमारा वेद मंत्र क्या कह रहा है? वेद मंत्र कुछ कहता है, हमें प्रेरित करता रहता है, प्रेरणा देता रहता है कि हे मानव! तू आ और मेरे में समाहित हो। चेतना में जब हम यह चिन्तन करते हैं कि मंत्र ऐसा क्यों कह रहा है तो विचार आता है- सम्भव लोकाम् ब्रह्म वाचो, कि यह जो ब्रह्म वाचो देवा है, वह ममत्व को धारण करने वाला है।

प्रत्येक मानव प्रेरणा का एक स्त्रोत्र बन करके रहता है, एक-एक वस्तु से प्रेरणा लेता रहता है क्योंकि मानव का यह जो शरीर है, यह एक सूक्ष्म अनुसंधानशाला के रूप में दृष्टिपात आता है। जब अनुसंधान किया जाता है तो यह प्रतीत होता है कि हमारे ऋषि-मुनियों ने कितना तपस्या में अपने जीवन को लगाया है क्योंकि उनका तपश्चर बड़ा विचित्र रहा है। वह परमपिता परमात्मा की चेतना में बद्ध हो रहे हैं। पूर्व काल में ऋषि-मुनियों

ने बड़ी गम्भीरता से अध्ययन किया है, गम्भीरता से इस संसार को जानने का प्रयास किया। मेरे पुत्रो! वेद का मंत्र यही कहता है कि हम परमपिता परमात्मा की महती को जानते हुए इस सागर से पार हो जाएं। जो मान-अपमान वाला सागर हमें दृष्टिपात आ रहा है, यह संसार रूपी एक सागर है।

हम नाना प्रकार की पूजा के सम्बन्ध में अपना विचार देते चले जा रहे थे। जहां यह विचार होता है कि देवम् भुवि लोकाम् ब्रह्म वाचो देवाः, यह जो देवपूजा है यह मानव को कहां-कहां ले जाती है। देवताओं का पूजन करना हमारा कर्तव्य है। एक मानव एक महापुरुष की जीवन शक्ति का, स्मरण शक्ति का प्रादुर्भाव करता है, परन्तु जब गम्भीरता में प्रवेश करता है तो एक महानता में उसका विचार बन करके रहता है। विचारने से प्रतीत होता है कि जो देवपूजा है, मानो यह जो याग है, इसमें दोनों प्रकार के देवताओं का पूजन हो रहा है। एक पूजन जड़वत् के रूप में है, एक चेतन्यवत् के रूप में है। आचार्य के समीप ब्रह्मचारी जैसे ही चरणों में विद्यमान हुआ तो वह मुनिवरो! ममत्व धारण करने वाला उपदेश देना प्रारम्भ करने लगे। उपदेशाम् अमृताम् ब्रह्म लोकाम् ब्रह्मे व्रत्तमदेवाः। अपने उपदेश में माता कहती है ब्रह्म वाचो, हे ब्रह्मचारी! वस्तु समालोको ब्रह्मवाचा आचार्य के समीप विद्यमान हो करके तू अपनी अन्तर्हृदय की नाना प्रेरणा को अपने में धारण करना। माता का यह सार्थक उपदेश है और माता अपने बाल्य को ऊंचा बनाना चाहती है।

ब्रह्मचारी आचार्य के कुल में, आचार्य के समीप विद्यमान हो करके कहता है कि हे भगवन्! आप मेरा हृदय पवित्र बना दीजिए। तो आचार्य कहता है कि इन्द्रो भवो सम्भवाः, हे ब्रह्मचारी! तू इन्द्रियों को मुझे प्रदान कर। ब्रह्मचारी इन्द्रियों को प्रदान करता है और आचार्य की जो वमन की हुई विद्या है, वह अपने में ग्रहण करता है। तो विचार विनिमय क्या? यह

चेतन्य देवताओं का पूजन है जिसमें हम महापुरुषों के, आचार्यों के चरणामृतों का पान करके अपने मानव जीवन को सार्थक बनाते चले जाएं और महान देवपूजा करते चले जाएं। तो प्रारम्भ में आदि ऋषियों ने विद्यमान हो करके मानव के जीवन की एक मानवीय धारा का निर्माण किया कि समाज इस प्रकार से कटिबद्ध हो जाए, जिससे संसार में त्रुटि न रहे, संसार में विवेकी पुरुष बन जाएं और विवेकी बन करके उनके राग, द्वेष न रहें। जो मानव अपने में अनुशासन वृत्ति बन जाता है तो उसे और अनुशासन की विशेष आवश्यकता नहीं रहती है; आचार्य के चरणों में ही तो प्राणी अनुशासित होता है। उनके आचरणों को अपने में ग्रहण करना, यह देवपूजा कहलाती है।

मेरे प्यारे देखो! मुझे स्मरण आता रहता है, एक समय श्वेताश्वेतर भारद्वाज मुनि के यहां एक याग होने वाला था, देवपूजा होने वाली थी। जैसे ही उन्होंने देवताओं का आह्वान किया और याग जैसे ही प्रारम्भ हुआ तो नाना ऋषिवर उसके समीप पहुंचे। याग के श्वेतकेतु ब्रह्मा थे। जब याग होने वाला था तो गाड़ीवान रेवक मुनि महाराज ने कहा कि महाराज! यह क्या कर रहे हो? उन्होंने कहा कि प्रभु! हम देवपूजा कर रहे हैं, देवताओं को हवि प्रदान कर रहे हैं। वही हवि जब देवताओं को जाती है तो हवि का परमाणुवाद बन करके परमाणु इस द्यौलोक में परिवर्तित होते रहते हैं। रेवक ऋषि ने कहा कि बहुत प्रियतम, प्रभु! आप याग कर रहे हैं परन्तु इसका ब्रह्मा कौन है? ब्रह्मा वह है जो ब्रह्म का उद्गीत गाता रहता है, जो ब्रह्म विद्या को अपने में ग्रहण करता रहता है, ब्रह्मा उसे कहते हैं जो अपने में अनुशासित है, अनुशासन में निहित होने वाला है। उसका यजमान से जो सम्बन्ध है, वह केवल यह है कि मैं वेद मंत्र का विशुद्ध रूप में उद्गीत गाता रहूं। जैसे उद्गाता उद्गीत गाते रहते हैं तो मैं वेदमंत्रों को समेटता रहता

हूँ, वेदमंत्र को स्मरण से क्रिया में लाने का प्रयास करता रहता हूँ तो वह देवपूजा के रूप में महान विज्ञान की प्रतिभा कहलाती है।

अह्यब्रह्म वाचा श्वेत श्वेताश्वेतर ने कहा कि प्रभु! मैं देवपूजा इस लिए कर रहा हूँ कि वायुमंडल पवित्र बन जाये। मैं विज्ञान के मार्ग में जाना चाहता हूँ, विज्ञान की नाना प्रकार की धाराओं को मैं जानने लगा हूँ परन्तु मैं याग भी करता हूँ। याग सृष्टि के प्रारम्भ से ले करके सदैव एक जन्म ब्रह्मा, यह मानवीयता की ऊँची धारा है, ऊँचा एक क्रियाकलाप है, जिस क्रियाकलाप को अपनाने के पश्चात् मानव के जीवन की धारा पवित्र बन जाती है। यागाम् भविते ब्रह्म लोकाम्, देखो यज्ञशाला में यह चार स्थलियाँ होती हैं- ब्रह्मा, उद्गाता, अध्वर्यु और यजमान। मैंने इससे पूर्वकाल में कहा कि यजमान विशेष होता है, यजमान प्रतिष्ठित होता है, वह प्रतिष्ठावादी होता है। यजमान सबसे प्रार्थना करता है, निर्वाचन करता है, निर्वाचन करके उनके चरणों की वन्दना करता हुआ वह अपनी वाणी को ही नहीं शाश्वत जीवन की धारा को ऊँचा बनाना चाहता है, वह द्रव्य का स्वामी नहीं बनना चाहता। वह स्वामी तो है, स्वामित्व तो उसकी आभा में निहित रहता है। यज्ञों के सम्बन्ध में बहुत सा क्रियाकलाप मुझे स्मरण है, आज केवल यह उच्चारण करना है कि यज्ञशाला में जो ब्रह्मा है, वह ब्रह्मा उद्गीत गाता है।

एक समय जब याग हो रहा था तो मुनिवरो! श्वेताश्वेतर भारद्वाज ने मुनि से यह प्रश्न किया कि महाराज यह जो याग है यह क्या है? उन्होंने कहा कि प्रभु! यह याग क्या नहीं है? वह मौन हो करके बोले कि प्रभु! उत्तर तो आपका यथार्थ है परन्तु मैं यह जानना चाहता हूँ कि याग की प्रतिभा का जन्म कहां पर हुआ है? उन्होंने कहा कि याग की प्रतिभा का जन्म इस ब्रह्मांड से हुआ है। परमपिता परमात्मा सृजन करने वाला है, परमात्मा

रचयिता है। वह रचयिता होने से ही याग की प्रतिभा का जन्म हो जाता है। क्योंकि जितना भी शुभ क्रियाकलाप हो रहा है, जितना भी सुकर्म हो रहा है, उस कर्म के गर्भ में याग निहित रहता है। याग का अभिप्राय केवल यही है कि हमारी वाणी पवित्र हो, हम वेद मंत्रों का उद्धोष कर सकें, उनको क्रियात्मक रूप दे सकें। देवपूजा के सम्बन्ध में भारद्वाज मुनि का तो यह कथन है कि सृष्टि के प्रारम्भ में प्रभु ने इस संसार को रचने से पूर्व अपने में उद्गाता, अध्वर्यु बन करके, ब्रह्मा बन करके यज्ञशाला में यज्ञ प्रारम्भ हुआ।

ऋषि कहते हैं कि यह सृष्टि रूपी जो जगत है, यह सर्वत्र याग के रूप में परिणित हो रही है, यह एक देवपूजा के रूप में परिणित हो रही है। देवताजन तरंगों को ग्रहण करते रहते हैं, उन तरंगों को ग्रहण करके यह प्रकृति अथवा सृष्टि का एक चक्र चलता रहता है, गतिशील होता रहता है। परमपिता परमात्मा ने सृष्टि के प्रारम्भ में, प्रादुर्भाव करते ही इस याग की रचना की और यज्ञशाला की रचना करके स्वयं ब्रह्मा बन गये। इस अन्तरिक्ष के आंगन में वायु उद्गीत गाने लगा। अग्नि प्रचंड करके, अपने में ज्ञान रूपी अग्नि का एक उग्ररूप धारण करता हुआ, मुनिवरो देखो, बुद्धिमान पवित्र बनने की अपने में आकांक्षा कर रहा है। तो आत्मा यजमान बन करके, परमात्मा ब्रह्मा बन करके, जो पंचमहाभूत हैं यह उद्गाता, अध्वर्यु और पुरोहित बन करके, इस संसार रूपी याग की एक रचना हो गई। यह देवपूजा के रूप में रचना हुई।

बेटा! यहां देवताओं की पूजा का अभिप्राय यह है कि यह जो पंचमहाभूत हैं, यह हमारे देवता हैं। परमात्मा हमारा देवता कहलाता है। मुनिवरो! जीव आत्मा जिस मानव शरीर में प्रवेश करता है तो परमात्मा का चिन्तन करना, उसके गुणों को अपने में धारण करने का नाम एक

याग कहलाता है। जैसे परमपिता परमात्मा नम्र है तो मानव को भी नम्र रहना है। इससे उसके गुणों को हम अपने में धारण कर रहे हैं। परमात्मा तेजोमयी है, हमें भी तेजोमयी बनना है। परमपिता परमात्मा क्रियाशील हैं, हमें भी क्रियाशील बनना चाहिए। परमात्मा मौन रहते हैं तो मानव को भी उसी के अनुसार अपने को बरतना चाहिए। वो **परमपिता परमात्मा के गुणों को धारण करना ही परमपिता परमात्मा की पूजा करनी है, परमात्मा में रत्न होना है।** पूजन का अभिप्राय मैंने अभी-अभी तुम्हें वर्णन किया है कि उसके सदुपयोग का नामोकरण ही उसकी पूजा कही जाती है। एक मानव कहता है कि हम परमात्मा के अनुकूल अथवा उसकी प्रतिभा को कैसे जान सकते हैं? देखो इसमें यह उत्तर प्राप्त होता है कि परमपिता परमात्मा सर्वत्र रहने वाले हैं, इसलिए मानव की यह दृष्टि रहनी चाहिए, विचार रहने चाहिए कि विचारों में संकीर्णता न आ जाए।

मुनिवरो! जैसे माता अपने पुत्र का पालन कर रही है तो वह पालन में भी ममता को विशेष महत्व न दे करके, वह अपने संकल्प को जब महत्वता देती है और यह कहती है कि पालना करना ही मेरा कर्त्तव्य है, पालना करना ही मेरी प्रतिभा कहलाती है क्योंकि यह बाल्य परमपिता परमात्मा की सम्पदा है। माता जब यह विचारती है कि यह जो मेरा बाल्य है, यह तो प्रभु की सम्पदा है क्योंकि उसने इसकी रचना की है, ऐसी विज्ञानमयी धारा को मेरे प्रभु ने जन्म दिया है। इसके ऊपर मानव विचारने लगे तो विचारता ही रहता है, अन्त में इस ब्रह्म पिंड को ब्रह्मांड से समन्वय करा देता है तो बेटा! यह पिंड ऐसा ही विचित्र है। विचार आता है कि परमपिता परमात्मा की उस महानता में रत्न रहती हुई माता अपने प्यारे पुत्र का पालन कर रही है तो वह एक याग कर रही है, वह देवपूजा कर रही है। वह देवताओं को उस बाल्य को प्रदान कर देती है क्योंकि देवत्व ब्रह्मवाचा, यह जो संसार है, यह देवताओं की पुरी है। देवता बना करके माता देवत्व को प्राप्त करा

देती है क्योंकि यह ब्रह्म का जगत है तो ब्रह्म को प्राप्त करा देती है। देवताओं का हूत करा-करा करके मुनिवरो! बाल्य को ऊंचा बना करके ब्रह्मवेत्ता बना देती है तो वह याग कर रही है। तो वह याग एक देवपूजा के रूप में माना गया है।

बेटा! भिन्न-भिन्न प्रकार के यागों का चयन हमारे वैदिक साहित्य में आता रहता है। मैंने तुम्हें बहुत पुरातन काल में कहा है कि वेद मंत्रों में ऐसे उद्गीत गाये जाते हैं जिनके गाने से मेघ मंडलों की उत्पत्ति हो जाती है। सुन्दर-सुन्दर साकल्य को एकत्रित करके, हम जब याग करते हैं, हवि देवताओं को प्रदान करते हैं और भेदन करती हुई अग्नि अन्तरिक्ष में उसे छा देती है तो धीमी-धीमी वृष्टि प्रारम्भ हो जाती है। वह वृष्टि हमारे मूल का एक कारण बनती है। वही प्रभु का आधान बन करके पृथ्वी को व्यंजनों वाली बना देती है। तो विचार विनिमय क्या मेरे पुत्रो! कि वह देवयाग हो रहा है। इसी प्रकार देवत्व के द्वारा अब हमें उन गुणों को धारण करना है जो देवता में निहित हैं क्योंकि तभी तो याग बनेगा, अन्यथा याग नहीं बन सकेगा। अग्निहोत्र या अग्नि में साकल्य प्रदान करने से ही हम याज्ञिक नहीं बन जाते हैं, याज्ञिक उस काल में बनते हैं कि जैसे अग्नि ऊर्ध्वा में गति करती है तो मानव को अपने विचारों को ऊर्ध्वा बनाना चाहिए। अग्नि प्रसारण करती है तो मानव के विचारों में पुरुषार्थ शक्ति आ जानी चाहिए। अग्नि सुगन्धि देती है तो मानव के जीवन में सुगन्धि आनी चाहिए। सुगन्ध को पान करके हिंसक प्राणी भी मुनिवरो! सुगन्धि में परिणित हो जाता है।

बेटा! बहुत पुरातन काल में एक समय मेरे पूज्यपाद गुरुदेव बोले कि हे ब्रह्मचारी! आओ आज भ्रमण कर आएँ। मैं और मेरे पूज्यपाद गुरुदेव भ्रमण करते-करते कुक्कुट ऋषि महाराज के द्वार पर पहुँचे तो उन्होंने नाना प्रकार के कन्द-मूल ले करके स्वागत किया। महात्मा कुक्कुट मुनि महाराज

अपने में याज्ञिक बने हुए थे। गुरुदेव ने कहा कि प्रभु! आप आधुनिक काल में आप क्रियाकलाप करते हैं? उन्होंने कहा सम्भूति ब्रह्म लोकाम् वेदाः अमृताम् देवाम् ब्रह्म यागाम् देव पूजम् ब्रह्म वृतो देवाः, वेद के आचार्य कुक्कुट मुनि ने कहा कि प्रभु! मैं इस समय देवयाग करता रहता हूं, मैं देवताओं का आह्वान करता रहता हूं। गुरुदेव ने कहा कि प्रभु! आप देवताओं का गान गाइये। वेद मंत्रों से देवताओं का जब जटापाठ में गान गाने लगे तो अपनी-अपनी गुफाओं को त्याग करके कुछ महात्मा, महान ऋषि उनके समीप आ गये। परन्तु उन्होंने जब और उज्ज्वलता में देवत्व का गान गाया और वह याग करने लगे, सुगन्धि करने लगे, अग्नि में साकल्य प्रदान करने लगे तो देखो! इतने में मृगराज, सिंहराज भी उनके समीप विद्यमान हो गये। सर्पराज, सिंहराज भी उस सुगन्धि को ग्रहण करते हैं क्योंकि परमात्मा हिंसक नहीं है, इसलिए देवता हिंसक नहीं हैं। इसलिए मानव को अपनी हीनता को त्याग करके देवताओं के गुणों को अपने में धारण करना है।

हम याज्ञिक उस काल में बनेंगे जब हमारा हृदय निर्भयता में परिणित हो जाए, हमारे हृदय में संकोच न रहे, प्राणी-प्राणी से मिलन करके हम अपनी आभा को उसमें परिणित कर दें। हमने जीवन में जिस सुगन्धि को उत्पन्न किया है उस सुगन्धि हो हम दूसरों को प्रदान करते रहें। निर्भयता की सुगन्धि मानवीयता में पवित्र होती है। साकल्य जैसे अग्नि में परिणित करने के पश्चात् सुगन्धि देता है, इसी प्रकार मानव अपने अन्तर्हृदय में जो याग करने वाला है, उस याग में इतनी सुगन्धि होनी चाहिए कि सर्पराज उसके समीप आ जाएं तो उसे किसी प्रकार का संकोच न रहे। मुझे स्मरण आता रहता है बेटा! महाराज शिव माता पार्वती के सहित जब प्रातःकालीन याग करते थे तो हिमालय की कन्दराओं से सर्पराज आ करके उनके समीप विराजते थे। उसका परिणाम क्या कि जब मुनिवरो! परमपिता परमात्मा के व्यापकवाद में मानव रत्त हो जाता है तो वह देवताओं की पूजा करने लगता

है। हमें यह विचारना है, यह चिन्तन करना है कि जैसे हमारे में तेजोमयी है, ऐसे ही देखो, दूसरे हिंसक प्राणियों में भी तेजोमयी है। उनमें जड़वत् अपना क्रियाकलाप कर रहा है तो हममे भी कर रहा है।

यज्ञशाला में विद्यमान हो करके, अमृत कह करके यजमान जल का पान करता है, वह अमृत जब बनेगा जबकि हमारे हृदयों में हिंसा की प्रवृत्ति नहीं रहेगी। अहिंसामय हमारे विचार बन जायेंगे तो उसी काल में वह जल अमृत बन सकता है। अग्नि को तेजोमयी कहते हैं। वह तेजोमयी उस काल में बनेगी जब हमारे तेज को श्रवण करके हमारी विचारधारा से ऊंची रूप सुगन्धि को ले करके हिंसक प्राणी भी मौन हो जाता है। इसी प्रकार जैसे पृथ्वी के कणों का एक दूसरे में सन्निधान हो रहा है, सन्निधान मात्र से क्रियाकलाप हो रहा है परन्तु देखो, जब मानव अपने में रत्त हो करके, अपने में देवत्व बन करके जब वह पृथ्वी के आंगन में पृथ्वी का उद्गीत गाता है, पृथ्वी के विचारों की सुगन्धि देता है तो उस सुगन्धि को प्राणीमात्र पान करता है। इसी प्रकार आपोमयी अमृत है और पृथ्वी ममत्व को धारण करने वाली है, वह अग्नि प्रकाश को तेजोमयी बनाने वाली है। मुनिवरो! कौन सी वायु प्राणवर्धक कहलाती है, वह प्राण कहां अपना क्रियाकलाप नहीं कर रहा है? वह प्राण ही तो देवता है, वह वायु के रूप में निहित रहने वाला है, वायु अपने में गति कर रही है, प्राण अपने में संचार कर रहा है। वह प्रत्येक प्राणी के हृदय में विद्यमान है, अवकाश प्रत्येक प्राणी में विद्यमान है।

जब इस प्रकार का हमारे विचारों में व्यापकवाद आ जाता है तो हम देवपूजा में रत्त हो जाते हैं। जब इस प्रकार देवताओं के गुणों को अपने में धारण करते हैं तो वह पूजा कहलाती है। बेटा! पूजा का अभिप्राय तुमने जान लिया होगा। जब हमारी पूजा सिद्ध हो जाती है तो हम साधक बन जाते हैं, हम ऋषि और मुनि बन जाते हैं, हम सब प्राणियों को साकल्यों

की सुगन्धि दे करके सार्थक बन जाते हैं, हमारे जीवन में एक महानता की प्रतिभा जागरूक हो जाती है। जब प्रत्येक प्राणीमात्र एक प्राण सूत्र से पिरोया हुआ तेजोमयी अग्नि के तेजों को अपने में ग्रहण कर रहा है, आपो उसी प्रकार अमृतमयी बनी हुई है, इसी प्रकार गुरुत्व सर्वत्र में विद्यमान है तो मुनिवरो! उसके पश्चात् मानव, मानव को संकोच कैसे बना रहता है? यह मेरे विचार में अब तक नहीं आया है। तो बेटा! महात्मा कुक्कुट मुनि महाराज इन विचारों से याग कर रहे थे, इन विचारों से साकल्य अग्नि में प्रदान कर रहे थे।

इन विचारों को जब मानव अपनी अन्तरात्मा में दृढ़ बना लेता है तो हिंसक, हिंसक नहीं रहता, वह प्राणों की वन्दना में, वह याग में पूजक बन कर पूजा के रूपों में अपने को ही स्वीकार करता है। वह अपने को पूजक स्वीकार करके परमात्मा के समीप चला जाता है। मुनिवरो! वह वायु को भिन्न-भिन्न रूपों में दृष्टिपात करता है, अग्नि को भिन्न-भिन्न रूपों में दृष्टिपात करता है, जल को भिन्न-भिन्न रूपों में दृष्टिपात करता है। वही जल है जो अग्नि के तेजोमयी स्वरूप से सन्निधान करके देखो, उसके रूप को धारण कर लेता है तो वही अग्नि है जब यह उग्र रूप को धारण करके, वह शान्त हो करके, उसके गर्भ में निहित हो जाती है। यह वायु वेग में विशेषता से गति करता है, उग्र रूप धारण करता है तो उसमें प्राण सत्ता का उद्घोष होता है और वह उत्तेजित हो करके जल को कहीं का कहीं पहुंचा देता है, पार्थिव्य परमाणुओं को कहीं का कहीं पहुंचा देता है। यह प्रभु का कैसा अनुपम यज्ञमयी संसार है, इसमें मुनिवरो! प्रत्येक मानव याज्ञिक बनना चाहता है।

सृष्टि के प्रारम्भ में आचार्यों ने मानव को कहा है कि हे मानव! तू संसार में प्रभु को स्मरण करना। जहां तू संसार के नित्यप्रति कार्यों में

रत्न रह करके अपनी मानवीयता में परिणित रहता है तो तू अपने प्रभु का स्मरण करता हुआ, परमात्मा की सृष्टि को विचारता हुआ, इस यज्ञशाला में परिणित हो करके तू अपने में साकल्य प्रदान कर। जैसे साकल्य का विभाजन हो जाता है, ऐसे ही तेरी प्रवृत्तियों का विभाजन हो जाना चाहिए। जैसे अग्नि प्रत्येक देवता को सूक्ष्म सुगन्धि पहुंचा देती है, वैसे ही तेरे मन की प्रवृत्ति आत्मा के सन्निधान मात्र से देवत्व सूक्ष्मता को प्राप्त होती चली जाती है। सूक्ष्म धारा बन करके तू उस परमपिता परमात्मा के इस सृष्टिमयी जगत को अपने में विचारने वाला बन। संसार का प्रत्येक कार्य इसी प्रकार होता रहता है परन्तु मानव अपने संसार को क्रियाकलापों से पूर्व परमपिता परमात्मा के क्रियाकलाप में परिणित हो करके, देवताओं की पूजा में परिणित हो करके, उसके पश्चात् वह संसार में प्रत्येक वस्तु को प्रभु की स्वीकार करता है और उसको उपभोग में लाना जब प्रारम्भ करता है तो मानव का जीवन पवित्र बन जाता है।

मेरे प्यारे! विचार मैं क्या दे रहा था, उड़ान उड़ता हुआ बेटा! बहुत दूरी चला गया हूं। उड़ान उड़ता हुआ देवताओं के सूक्ष्मतम रहस्यतम में चला गया हूं। व्यापकता की आभा में रत्न हो करके महात्मा कुक्कुट मुनि महाराज इस प्रकार का अन्वेषण करते रहते थे। उन्होंने कहा कि प्रभु! मैं देव पूजा नित्यप्रति ही सदैव करता रहता हूं। देवताओं की पूजा का अभिप्राय यह है कि अपने में उनके गुणों को धारण करें। उन गुणों को धारण करने का नाम ही देवपूजा कहलाती है। विचारवेत्ता ने अपने वाक्यों को प्रकट करते हुए कहा कि सम्भवा लोकाम् नमः का ब्रहे वाचप्रह सृष्टि देवाः। वह न्यौदा में मंत्रों का उद्गीत गाता हुआ अपने में विचारता रहता है कि मैं परमात्मा की प्रतिभा में रत्न हो गया हूं, देवपूजा करके मेरा जीवन ऊर्ध्वा में गति कर गया है। परमात्मा के गुणों को धारण करता हुआ मैं परमात्मा की उस

महान पगडंडी को ग्रहण करने वाला हूं, जिस पगडंडी को ग्रहण करके मानव के जीवन की प्रतिभा ऊंची बन जाती है।

मानव को इस संसार के महान वैभव में आ करके अपने में वैभव की पूर्ति नहीं होती तो मानव नाना प्रकार से उस अग्नि को एक वृत्त रूप बना करके, चिन्ता के क्षेत्रों में अपनी आयु को सूक्ष्म बनाना प्रारम्भ कर देता है। आयु को कौन सूक्ष्म बनाता है? जिसके मन और प्राण दोनों याग में नहीं रहते। जब उन दोनों में विकृतता आ जाती है, संकीर्णवाद आ जाता है तो वह अशुद्ध चिन्तन करता हुआ, परमात्मा की सृष्टि को न विचार करके, विशेष चिन्तन को अपना विषय बना लेता है। उसका अन्तःकरण उसकी प्रतिभा को दमन करता हुआ, मन उसकी आभा में रत हो करके, जिसका उस संसार में कोई अस्तित्व नहीं होता है, उसकी आभा में उसके अन्तर्गत वह भ्रमण करता रहता है। जहां उसे यज्ञशाला की अग्नि को अपने में अग्नि बनाना था वहां जिस वस्तु का निर्माण हुआ है, मानव उसके अन्तर्गत भ्रमण करके अपने को, अपनी आयु को सूक्ष्म बनाता रहता है। यह विचार प्रियता में नहीं होते, इन विचारों में शाश्वतता नहीं होती, सत्य नहीं होता। इसलिए हमारा विचार यह कहता है कि मानव को अपनी आयु को दीर्घ बनाना है।

परमात्मा के दिये हुए विचार, वेद के मंत्रों के द्वारा जो भिन्न-भिन्न प्रकार के यागों की प्रतिभा अथवा याग का वर्णन है, उनमें देवपूजा ही एक विशेष पूजा कहलाती है। इस देवपूजा के सम्बन्ध में मानव उन देवताओं में भ्रमण करता है जो देवता वास्तव में नहीं होते। हम उन देवताओं के समीप पहुंचे, जो वास्तव में बाह्य जगत और आन्तरिक जगत, दोनों में अपना क्रियाकलाप कर रहे हैं। उन देवताओं के समीप जा करके हम यज्ञ की परिक्रमा में रत हो करके याग को अपने जीवन में धारण करें। जो धारण कर लेता, वही परिक्रमा करता है। विचार आता रहता है, हम जब अपने

में बहुत पुरातन कालों की वार्ताएं स्मरण करने लगते हैं, ऋषि-मुनियों का विचार जब अपने में चिन्तन करने लगते हैं तो मानव को सृष्टि के रचयिता का ध्यान आता है। ऋषि-मुनियों ने मानव के जीवन के लिए ऐसी भूमिका बनाई है कि तुम्हारा जीवन इस क्रियाकलाप में गतिशील होता रहे, जिससे मानव अंधकार में न चला जाए, मानव रूढ़ि में न चला जाए। रूढ़ि किसे कहते हैं? जो वस्तु का विनाश हो गया या विनाश होने वाला है, उसमें हम सदैव रक्त रहें और जो सदैव रहने वाला चिन्तन है, उसको स्वीकार न करें, उसका नाम रूढ़ि कहलाता है। रूढ़ि हम उसे कहते हैं जो हमारी अन्तरात्मा तो स्वीकार कर नहीं रही परन्तु वह बाह्य जगत में, मानव प्रभाव से अपनी इस वसुन्धरा के रूप को एक कुरूप धारणा करा देता है, उसी का नाम एक रूढ़ि कहलाता है।

रूढ़ि कहते हैं जो न हो, जैसे मृत्यु है, मृत्यु को ही स्वीकार करना, मृत्यु में सदैव चिन्तित रहना, वह रूढ़ि है। क्योंकि मृत्यु अपने में मृत्यु नहीं होती है, मृत्यु केवल एक ऐसा शब्द है कि अज्ञानता से इस शब्द की उत्पत्ति हुई है, उसकी उपलब्धि हुई है, उसको हम सदैव स्वीकार करते रहे, उसको अपने में लाते रहे तो मानव उसमें आयु को सूक्ष्म बना लेता है। विचार यह कहता है कि मृत्यु तो अपने में कोई मृत्यु नहीं है। यह याग करता है कि प्रत्येक साकल्य जब अग्नि में प्रवेश करता है तो उसके परमाणु जब अग्नि में प्रवेश करते हैं, वह अग्नि रूप बना लेता है, जल के परमाणु जल में ओतप्रोत रहते हैं, वह जल का रूप बन जाता है, गुरुत्व पृथ्वी का रूप बन जाता है। इसी प्रकार अन्तरिक्ष अपने रूप में अवकाश रहता है, वायु मानो, प्राण अपने में सखा बन करके रक्त रहता है, इसी प्रकार जब अपने में देखो जलम् वृहे, अपने स्वरूप में यह अपने में ही प्रवेश हो गया तो जिस मृत्यु का हम चिन्तन करते हैं, अज्ञान का चिन्तन करते हैं तो उस अज्ञान में हमें रक्त नहीं रहना चाहिए। यदि उसमें रक्त रहता है तो उसका नाम रूढ़ि कहलाता

है चाहे वह धर्म के नामों पर हो, चाहे वह राष्ट्र के नामोकरण वाली हो, परन्तु हमें उसमें रत रहना नहीं चाहिए, हमें उससे ऊर्ध्वा गति में जाना चाहिए। विचारना चाहिए कि हम प्रभु के राष्ट्र में हैं। प्रभु के राष्ट्र में हम याग, हम देवपूजा करते रहें, हम उसी की पूजा में रत रहें।

बेटा! आज मैं विशेष चर्चा तो तुम्हें देने नहीं आया हूँ, मैं तो केवल परिचय देने के लिए आता रहता हूँ और परिचय देना हमारा कर्तव्य है। आज मैंने सूक्ष्म यह परिचय दिया है और वह परिचय क्या है कि हम अपने विचारों को इतने ऊर्ध्वा में ले जाएं, इतनी देवपूजा में अपने को रत कर दें जिससे हमारे अन्तःकरण में जो यह भिन्न-भिन्न प्रकार के चित्तों की उत्पत्तियां और चित्त में नाना प्रकार के जो संस्कार हैं, उनका भी हम साक्षात्कार कर सकें। जैसे हम याग में, देव याग में ही तो परिणित होते रहते हैं। ऋषि-मुनि जब साकल्य रूपी याग को समाप्त करके, जब वह अपने हृदय रूपी सूक्ष्म साकल्यों को एकत्रित करते हैं, अग्नि के परमाणुओं को एकत्रित करते हैं, जल के परमाणुओं को एकत्रित करते हैं, पार्थिव तत्त्वों को ले करके उन परमाणुओं का साकल्य बना करके प्राण मानो, श्रद्धामयी घृत को उसमें परिणित कर देते हैं और वह ज्ञान रूपी जो अग्नि प्रचंड हो रही है, उसमें जब इन्हें हूत कर देते हैं तो साधक सर्वत्र अज्ञानता से ज्ञान में प्रवेश कर जाता है, यह योगियों का एक अमूल्य विषय बन जाता है। मुनिवरो! वह देव पूजा कहां से कहां चली गई। विचार ब्रह्म वाचो, हमने अग्नि में साकल्य प्रदान किया, आगे गमन किया तो उसको चिन्तन में लाया गया। आगे विषय बना तो उसको चिन्तन में ला करके, साकल्य एकत्रित करके ज्ञान रूपी जो अग्नि है, उसमें प्रवेश करके समाहित हो जाना चाहिए। उसमें मौन रह करके कि प्रभु का जगत अनुभववृत्ति है क्योंकि परमात्मा सर्वत्रता को धारण कर रहा है। ऐसे हमें ज्ञान और विवेक के क्षेत्र में जा करके परमात्मा की उस महान आभा में रत हो करके, मोक्ष की पगडंडी को ग्रहण करके हम परमात्मा में प्राप्त हो जाएं।

आज का विचार हमारा क्या कह रहा है कि परमपिता परमात्मा की आराधना करते हुए, देव का चिन्तन करते हुए उसकी महानता, उसके गुणों को अपने में धारण करते हुए हमें इस संसार सागर से पार हो जाना चाहिए। समय मिलेगा तो जब यागों का विषय चल ही रहा है तो हम पितृ याग की चर्चा करेंगे कि पितृ याग क्या होता है। आज हम देवपूजा के सम्बन्ध में मुनिवरो! चिन्तन करते-करते अन्तिम छोर पर चले गये। आज का वाक् समाप्त, अब वेदों का पठन-पाठन होगा।

अमृतसर

३-८-१९८५

पितृ कौन हैं- १

देखो मुनिवरो! आज हम तुम्हारे समक्ष पूर्व की भांति कुछ मनोहर वेद मंत्रों का गुणगान गाते चले जा रहे थे। यह भी तुम्हें प्रतीत हो गया होगा आज हमने पूर्व से जिन वेद मंत्रों का पठन-पाठन किया। हमारे यहां परम्परागतों से ही उस मनोहर वेदवाणी का प्रसारण होता रहता है जिस पवित्र वेदवाणी में उस मेरे देव, जो संसार का नियंता है अथवा निर्माण करने वाला है, उस अपने देव की महिमा का हम गुणगान गाते रहते हैं। उस प्रभु की महिमा और उसकी महानता का प्रत्येक मंत्र उद्गीत गाता रहता है और वह वर्णन करता रहता है कि वह परमपिता परमात्मा कितना अनुपम है, मानो वह कितना श्रोत्रोन्मयी कहलाता है कि जब भी मानव मधुरूपों में गान गाने लगता है तो उसका अन्तरात्मा अथवा अन्तर्हृदय पवित्र होना प्रारम्भ हो जाता है क्योंकि वेद हमारा अन्तःकरणीय प्रकाश कहलाता है। नेत्रों का देवता बन करके प्रातः काल का वह सूर्य नेत्रों की ज्योति को उद्बुद्ध करता है अथवा उसका सहायक बनता है परन्तु वैदिक जो सूर्य है, वेद रूपी जो सूर्य है वह हमारे अन्तःकरण को पवित्र बनाता है। इसीलिए मानव को प्रातःकालीन अपने प्रभु का गुणगान गाना चाहिए, क्योंकि वह हमारा पितृ कहलाता है।

हमारे यहां पितृ की व्याख्या, कई काल में भिन्न-भिन्न रूपों में इसका वर्णन करते रहते हैं परन्तु जब विचारते हैं कि वह परमपिता परमात्मा पितृ कहलाता है, अन्तरात्मा के अन्तर्हृदय स्थलि में वह मेरा देव विद्यमान है। नाना रूपों में प्रत्येक मानव के समीप उसकी प्रतिभा निहित रहती है। संसार के किसी भी कण में चले जाओ, किसी भी विज्ञानवेत्ता के समीप

चले जाओ परन्तु जब विज्ञान के रूप में प्रवेश करेंगे तो वह परमपिता परमात्मा उस विज्ञान के मूल में दृष्टिपात आयेगा। जब हम अणु और परमाणु के क्षेत्र में चले जाते हैं तो अणु और परमाणुओं के क्षेत्र में भी उस प्रभु की महानता हमें दृष्टिपात आती है क्योंकि वह परमपिता परमात्मा हमारा पितृ कहलाता है। पितृ वही होता है जो रक्षा करने वाला हो। पितृ वह कहलाता है जो हमें देता है, क्योंकि पितृ का अभिप्राय है जो देने वाला है।

बहुत पुरातन काल हुआ कि हमारे यहां ऋषि-मुनियों का एक समूह विद्यमान हुआ। महर्षि प्रह्लाण, शिलक और दालभ्य इन तीनों ऋषियों की अध्यक्षता में ऋषि-मुनियों का एक समूह विद्यमान हो करके विचारने लगा। उन्होंने सबसे प्रथम तो देवपूजन किया और देवपूजा के पश्चात् वह विचारने लगे कि यह पितृ कौन हैं। पितृ के ऊपर विवेचना होने लगी। इसमें महर्षि लोमश, महर्षि वशिष्ठ, महर्षि कागभुषंड जी और महर्षि जमदग्नि, महर्षि विश्वामित्र, महर्षि पिप्पलाद, महर्षि रेनकेतु, महर्षि सोमकेतु मुनि महाराज, महर्षि भारद्वाज, महर्षि व्रतकेतु, गाड़ीवान रेवक मुनि महाराज, महर्षि स्वाति, महर्षि श्वेताश्वेतर और सोमवृतीका, ब्रह्मचारियों में ब्रह्मचारी कबन्धि, ब्रह्मचारी सुकेता, ब्रह्मचारी यज्ञदत्तः और ब्रह्मचारी रोहणीकेतु आदि ब्रह्मवेत्ताओं का एक समाज एकत्रित हुआ। उसमें विचार होने लगा कि जब वेदों में मंत्र आते हैं, न्यौदा में मंत्रों का जब अध्ययन होने लगा कि यह पितृ कौन हैं। हमने देव तो जान लिए हैं कि देवता कौन हैं। उनकी यदि हम विवेचना करने लगते हैं तो बड़ा एक विशाल जगत हमारे समीप आता है। हम पितृ के सम्बन्ध में जानना चाहते हैं कि पितृ कौन हैं?

बेटा! महर्षि प्रह्लाण ने ऋषि-मुनियों से यह प्रश्न किया कि हे महाराज! हे ब्रह्मवेत्ताओ! मेरा बड़ा सौभाग्य है जो आज हम ब्रह्मवेत्ताओं के समूह में विद्यमान हैं, जहां गान गाने वाला गाता रहता है और उसके गान

में एक माधुर्यपन है। वह प्राणध्वनि का ध्वनित होना हमारे जीवन में स्वाभाविक अंग, एक रूप बन जाता है परन्तु हम सब इसलिए विद्यमान हुए हैं कि हम कुछ विचार विनिमय करें और आगे आने वाला जो भविष्य समाज है, उसको कुछ दे जाएं क्योंकि हम सब तपस्वी हैं, अनुष्ठानवेत्ता हैं, अनुष्ठान करने वाले हैं, आयु को दीर्घ बनाने वाले हैं, ब्रह्मवेत्ता हैं, ब्रह्म की आभा में, उड़ान में सदैव रत रहते हैं। हम यह जानना चाहते हैं कि यह पितृ कौन है?

ऋषि यह प्रश्न करके मौन हो गये। परन्तु महर्षि कागभुषंड जी उपस्थित हुए और उन्होंने कहा कि मेरे विचार में तो यह आता है कि जो भी हमें देते हैं वह पितृ कहलाते हैं, वह पितृ हैं। इतने में ही पिप्पलाद मुनि ने कहा कि ऋषिवर! इसकी विवेचना क्या है? हमें देने वाले तो सर्वत्र ही देते हैं। हम जब विज्ञान में अपने को ले जाते हैं तो यह संसार सर्वत्र ही हमें पितृ की दृष्टि से दृष्टिपात आता है क्योंकि वह हमें देते हैं। देने का अभिप्राय यह है कि हमारे मानव शरीर की रचना ऐसी है कि उसका ब्रह्मांड से समन्वय रहता है और हम अनुसंधान की दृष्टि से जब उसके गर्भ में प्रवेश करते हैं तो जितना भी लोक-लोकान्तरवाद है, वह सर्वत्र हमें कुछ न कुछ देते हैं।

जब यह वाक् आया कि वह देते हैं तो ऋषियों ने कहा कि भगवन्! इसकी बृते, तो पिप्पलाद मुनि ने पुनः यह कहा कि एक समय मेरे हृदय में यह विवेचना आई कि माता के गर्भ स्थल में जो शिशु होता है, उस शिशु के सम्बन्ध में विचारा जाए कि उसके कौन-कौन पितृ हैं। उन्होंने कहा कि इस सम्बन्ध में बहुत सा विचार हमारे समीप आता रहता है। प्रत्येक माह में प्रत्येक लोक-लोकान्तरों की अनुपम आवश्यकता के अनुसार उसमें धाराएं प्रवेश होती रहती हैं। धाराओं के रूपों में वर्णन करते हुए कहा कि

माता के गर्भ स्थल में जो शिशु अष्टमाह में होता है तो दो मंडल जिन्हें हमारे अरुन्धति और वशिष्ठ मंडल कहते हैं, उन दोनों मंडलों की धीमी छाया माता के गर्भ पर आती है क्योंकि वहां प्रकाश की आभा उसे प्राप्त होती है। विचारने से प्रतीत हुआ कि उस काल में वे उसके पितृ कहलाते हैं।

ऋषि जब पितृ की विवेचना में पहुंचे तो पिप्पलाद जी ने कहा कि हम तो केवल यह स्वीकार करते हैं कि माता-पिता के सन्निधान मात्र से ही शिशु का प्रवेश हुआ और शिशु के प्रवेश होते ही वह माता-पिता देखो, पितृ कहलाए। हमारा प्रश्न यह है कि पितृ याग करना है और वह पितृ याग कौन सा होता है। यह तो एक शाश्वत विचार है कि प्रत्येक लोक-लोकान्तरों की छाया आती है और मानव के तन्तुओं का निर्माण हो रहा है। मानव के तन्तुओं में जागरूकता आती है तो वह अपने में एक विद्यार्थी बन करके विचार विनिमय करता रहता है। परन्तु देखो, विचार यह है कि माता-पिता के सन्निधान मात्र से ही रचना की प्रतिभा का जन्म हुआ है। यह कैसे विचारा जाये, इसके ऊपर अन्वेषण होना बहुत अनिवार्य है।

महर्षि लोमश मुनि ने कहा कि भाई! मेरे विचार में तो यह आता है कि हमारे दो प्रकार के माता-पिता कहलाए जाते हैं, हमारे दो प्रकार के पितृ कहलाते हैं। एक पितृ चेतन्यता में रहता है और एक जड़वत् में रहता है। परमपिता परमात्मा जो सृष्टि का पिता है, उस सृष्टि के पिता ने ही मानव के शरीर का जब निर्माण किया तो निर्माणवेत्ता ने इस मानव शरीर को सर्वत्र ब्रह्मांड से कटिबद्ध कर दिया है, मानो उसी की आभा में नियुक्त कर दिया है। ऐसा जब विचार आया तो महर्षि लोमश मुनि ने कहा कि मेरे विचार में तो यह आ रहा है कि यह जो सर्वत्र ब्रह्मांड है, यह सब मानव के पितृ के रूप में विद्यमान है और किसी न किसी रूप में वह पितृ का क्रियाकलाप करता रहता है परन्तु पितृ का अभिप्राय केवल एक ही है कि जो रक्षा करने

वाला है। वह रक्षक कहलाता है। लौकिकता में जब हम प्रवेश करते हैं तो माता इसलिए पितृ कहलाती है क्योंकि उसके गर्भ स्थल में शिशु विद्यमान रहता है परन्तु वह जो वाह्य पिता है, वह पितृ इसलिए कहलाता है क्योंकि उसके सन्निधान मात्र से, जैसे परमपिता परमात्मा के सन्निधान मात्र से यह ब्रह्मांड अपने प्रतिक्रियाओं में रत्त हो जाता है, इसी प्रकार सन्निधान मात्र से ही शिशुओं में अवृत्तों का उदय हो जाता है। वह जो उदय हुआ है तो इसलिए वाह्य जगत में वह पितृ कहलाते हैं।

माता पितृ क्यों कहलाती है? क्योंकि माता रक्षा करती है, माता अपने गर्भ से ले करके और पांच वर्ष की आयु तक बाल्य को ऊंचा बना देती है। जब मैं माताओं के समीप पहुँचता हूँ तो मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि जो माता गम्भीर होती है और जो माता यह कहती है कि मैं पितृ हूँ, मुझे रक्षा करना बहुत अनिवार्य है तो माता केवल अन्नों से रक्षा नहीं कर सकती, अपने विचारों की जो रक्षा है, वह सबसे ऊर्ध्वा में है, वह ऊर्ध्वा में रक्षा कहलाती है। महर्षि लोमश मुनि ने यह कहा कि जब मैं माता के आंगन में क्रीड़ा करता था तो माता मुझे ब्रह्मज्ञान की आभा में परिणित कराती रहती थी। मैंने ऐसा श्रवण किया है कि माता की लोरियों का तो मुझे स्मरण नहीं है परन्तु उसके पश्चात् काल में जब माता अपने आंगन में प्रवेश कराती तो भोज्य ही कराती रहती। तन्दुलों का भोज्य करा करके गौ घृत के द्वारा मुझे प्रारम्भ में जब अन्नादि का प्रदान किया तो कहती थी कि यह जो प्रथम ग्रास है, हे बाल्य! वह तेरे ब्रह्मज्ञान का है, तू ब्रह्मज्ञानी बनना। परन्तु द्वितीय जो ग्रास प्रदान किया, वह प्राण के लिये किया कि तू प्राण को जानने वाला बन। तृतीय ग्रास प्रदान कराया तो यह कहा कि अन्नम् बृहे मानव वृत्ति, तेरा जो मन है वह पवित्र हो जाए। तो माता तीन ग्रास दे करके यह कहती है कि हे बालक! तू ब्रह्मवेत्ता बन, प्राण की प्रतिक्रिया को जान और यह जो मन है, इसकी आभा को ऊर्ध्वा में ले जा।

मुनिवरो! यह विचार आया कि माता अपने बाल्य को अपने आंगन में ही उसे क्या बनाना चाहती है? वह मेरी प्यारी मां वह माता भी है, पितृ भी है। पितृ मानमब्रहे, वह पितृ क्या चाहता है कि मेरे द्वार से उत्पन्न होने वाला ब्रह्मचारी ब्रह्मवेत्ता बन जाए, प्राणों का निदान करने लगे। यह मन प्रकृति का तन्तु है। ऋषि-मुनियों ने ऐसा माना है, महर्षि लोमश मुनि का यह कथन रहा है कि यह जो मन है यह अन्नाद में निहित रहता है। इस लिए विचारा कि मानव समाज को ऊंचा बनाने के लिए, हमें पितृयागी बनने के लिए, हमें अन्न को पवित्र बनाना है। अन्न कैसे पवित्र होगा? माता की भावना से अन्न पवित्र होगा और उस अन्न को जब पान किया जाता है तो मन में उन विशुद्ध तरंगों का जन्म होता है क्योंकि तरंगें मन से गुथी होती हैं और उन्हीं तरंगों से मानव के जीवन की धारा का प्रारम्भ होता है। तो यह वाह्य जगत में माता पितृ कहलाती है।

मुनिवरो! माता यह चाहती है कि मेरे गर्भ से ऊर्ध्वा में एक राजकुमार का जन्म हो जो राष्ट्र को ऊंचा बनाने वाला हो, अपने को राष्ट्रीयता में, अनुशासन में लाने वाला हो तो माता उसी प्रकार से विचारों को प्रदान कर देती है। देखो, माता अब्रहे। लोमश मुनि ने अपनी जीवन गाथाएं प्रकट करते हुए कहा कि माता ने मुझे ब्रह्मवेत्ता की शिक्षा दी है और यह कहा कि ब्रह्म वृत्ति: कि ब्रह्म को जानने वाला ही महान बनता है। माता ने जब यह कहा तो मुझे वृत्त बनाया और वृत्त बना करके जब आचार्य के कुल में प्रवेश कराया तो जो माता ने मुझे शिक्षा प्रदान कर दी थी, मैंने वही, उसी वेद के अंग को अपनाना प्रारम्भ कर दिया। मैं वेद के उस अंग को अपनाने लगा कि ब्रह्मज्ञान होना चाहिए। वेद कहता क्या है, वेदों में क्या शिक्षा है? तो महर्षि लोमश मुनि ने इस सम्बन्ध में कहा है कि मानवम् ब्रह्मे वृत्तम् देवाः, वेद में तीन प्रकार के विषय होते हैं। सबसे प्रथम लौकिक होता है, हमारा लौकिक जीवन ऊंचा होना चाहिए, द्वितीय वैज्ञानिक होना

चाहिए और तृतीय यौगिक होना चाहिए। तीन प्रकार की धाराएं प्रत्येक वेद मंत्र में हमें निहित होती दृष्टिपात आती हैं। वेद की प्रतिभा को कौन जानता है, जो लौकिकवाद को जानता है क्योंकि उसमें लौकिक ज्ञान और विज्ञान, लौकिक आभायें निहित रहती हैं।

बेटा! देखो उसमें अप्रतम् ब्रह्माः, विज्ञान क्या है कि हम अणु और परमाणुओं को कैसे जानें, वह विज्ञान के सम्बन्ध में क्या कहता है? विज्ञान उड़ान उड़ता हुआ मानव को कहां तक ले जाता है? वह उड़ान उड़ाता हुआ, प्राण की तरंगों में ले जाता है। प्राण मन से गुथा हुआ दृष्टिपात होता है, वह फिर परमाणुओं में ले जाकर परमाणुओं में भी प्राण को दृष्टिपात करता है। अणु को जब प्राण के रूप में दृष्टिपात करता है, वह ऊर्जा बन करके मानव को ऊर्ध्वागत बना देता है। इस प्रकार का जो विचार होता है, वह वैज्ञानिक होता है कि विज्ञान के मार्ग से हो करके हमें जाना है। अब वह विज्ञान को अपने अन्तर्हृदय में दृष्टिपात करता है। वह जो तरंगें, धाराओं का जन्म हो रहा है, वह जो हमारा शब्द विज्ञान है वह कहां जा रहा है? विज्ञान की धारा में जाता है। उसके पश्चात वह अग्नि के समीप विद्यमान हो करके विचारता है कि अग्नि की धाराओं पर मेरा शब्द विद्यमान हो करके वह शब्द ही द्यौ लोक का निर्माण करता है। वह द्यौ लोक उसी से निर्माणित होता है। वही शब्द जब श्रोत्रीय बन गया तो श्रोत्रीयता को ले करके वह इन्द्रलोक को प्राप्त हो जाता है। वही शब्द है जो धारागत हो रहा है, वह भूः, भुवः, स्वः ये तीन धारायें जब मानव के अन्तर्हृदय से उत्पन्न होती हैं तो उससे इन भूः, भुवः, स्वः लोकों का निर्माण हो जाता है। क्योंकि लोक को ऊंचा बनाने वाला भी विचार है, परलोक को ऊंचा बनाने वाला भी विचार है और प्रभु के मार्ग की उस पगडंडी को ग्रहण करने वाला भी विचार है। यह तीन प्रकार की धाराएं हमारे समीप आनी प्रारम्भ होती हैं परन्तु हम लौकिकता में ऊंचे बनें कि लोक में किस प्रकार हमारा व्यापार

होना चाहिए। हम माता के समीप विद्यमान हो करके, वह हमारी पितृ है, हमें उसकी सेवा करनी है, हमें पितृयागी बनना है। पिता के समीप विद्यमान हैं परन्तु देखो उसके समीप जा करके हमें पितृ याग करना है। याग का अभिप्राय यह है कि हम पवित्र अन्न को उन्हें ग्रहण कराते रहें और उनकी सेवा में सदैव ही रत्त रहें, तो यह लौकिकवाद कहलाता है।

पितृ भवा सम्भवाः, यह तो हमारे लौकिक पितृ कहलाते हैं। जो माता है, यह पितृ है। मुनिवरो! और भी जो पूर्वज हैं वह भी पितृ कहलाते हैं। उनके सुन्दर-सुन्दर आशीर्वाद, उनके सुविचारों को जब हम ग्रहण करेंगे तो उनके विचारों की शुभ विचारधारा हमारे अन्तःकरण में प्रवेश होगी। हमारा अन्तःकरण प्रकाशित हो करके, सुआभा में परिणित होता रहेगा। इसलिए हमारे आचार्यजन कहा करते हैं कि ब्रह्मचरिष्यामि देखो, ब्रह्मचारी आचार्य को पितृ कहता है। वह पितृ क्यों है? क्योंकि वह लौकिकवाद में ब्रह्मचारी को ले जाते हैं, वह मानव को लौकिकवाद में ले जाते हैं कि लौकिकवाद में सबसे प्रथम लोकाचरण, भिक्षा का जो प्रारम्भ होता है, वह केवल इसी माध्यम से होता है कि हमारा लौकिकवाद ऊंचा बनेगा। ब्रह्मचारी को आचार्य कहता है कि आओ! तुम अपने पूर्वजों के चरणों की वन्दना करो, उनसे आशीर्वाद की आभा में रत्त हो जाओ।

आशीर्वाद क्या है? इसके ऊपर भी एक बड़ा गम्भीर विचार ऋषि-मुनि देते रहते हैं। आशीर्वाद का अभिप्राय यह है कि हमारे हृदय में भी नम्रता आ जाए। यह आचार्य कहता है कि हे ब्रह्मचारी! आशीर्वाद तेरे लिए है और यह तेरा आशीर्वाद क्या कि तू नम्र बन जाएगा। जब तक तू नम्र नहीं बनेगा, किसी विद्या में तू पारायणता को प्राप्त नहीं होगा। इसलिए नम्र बनाने के लिए आचार्य चरणों की वन्दना को कहते हैं कि तेरा हृदय नमः होना चाहिए क्योंकि वह जो परमपिता परमात्मा है, जिसने हमारे

इस मानव शरीर की रचना की है, वह प्रायः नम्र है, अत्रहे वाचप्रहा, वह सर्वत्रता में विद्यमान है, वह सबका शोधन करने वाला है। वह हमारा पितृ कहलाता है। इसलिए हे ब्रह्मचारी! तू नम्र बन, माता के समीप जा, क्योंकि माता तेरी पितृ है, तुझे जो प्रेरणा प्राप्त हुई है माता से हुई है। उसके प्रति तू नम्र हो जा और जैसे बाल्यकाल में बालक! तेरे लिए माता नम्र बन गई थी, ऐसे ही तू भी नम्र बन करके नमः की आभा में रत्त हो जा। सबसे प्रथम ब्रह्मचरिष्यामि! हे बालक! जब तू पितृ के द्वार पर जाए, जब तेरा बाल्यकाल था तो पितृ की नम्र बन करके ही शिशु ने वन्दना की थी, वह वन्दना में परिणित हो गया था तो मानव! तू उसके प्रति अब स्वतः नम्र बन करके चल। आचार्यों के समीप तू विद्या का अध्ययन करने वाला है, तू विद्या का अध्ययन करके नम्र बन, क्योंकि **विद्या नम्रता से प्राप्त होती है**। जब तक नम्रता नहीं आती तो इसको हम प्राप्त नहीं कर सकते, क्योंकि विद्या हमें देती है, क्या देती है? एक धारा को हमने जाना है तो द्वितीय धारा का जन्म हो गया है। जब धारा पर धारा का जन्म होता रहेगा तो तेरे मस्तिष्क का विकास हो जायेगा। तेरे मस्तिष्क का जब विकास होगा तो मस्तिष्क में ब्रह्मांड की प्रत्येक वस्तु तेरे समीप आती रहेगी। इन वाक्यों को ले करके, नम्रता को अपने में धारण करता हुआ, विद्या विनोदिनी को अपने हृदय में धारण करता हुआ तू विज्ञान के युग में पहुंचेगा।

वेद का दूसरा अंग है जिसे हम विज्ञान कहते हैं। विज्ञान किसे कहते हैं? तरंगवाद में प्रवेश हो करके हम एक तरंग को जान करके द्वितीय तरंग में प्रवेश हो जाते हैं। उस तरंग का हम निर्माण करते हैं। निर्माणवेत्ताओं ने, हमारे यहां ऋषि-मुनियों ने विज्ञान के ऊपर जब उड़ान उड़नी प्रारम्भ की तो एक-एक ऋषि ऐसा हुआ है जिन्होंने एक-एक आकाश गंगा की पृथ्वियों को गिनने में असमर्थता प्रतीत की है। एक आकाश गंगा में सूर्यों की गणना करने में ही मौन हो गया है। जब और ऊर्ध्वा में गति पहुंची,

जब वह सौर मंडलों में पहुंचा, सौर मंडलों की गणना करने लगा तो कुछ सीमाबद्ध हो करके शान्त हो गया। जब आकाश गंगाओं में पहुंच गया तो अनन्त आकाश गंगाएँ दृष्टिपात होने लगीं। जब अनन्त आकाश गंगाएँ दृष्टिपात होने लगीं तो वहां भी मौन हो गया और यह विचारने लगा कि आकाश गंगा कहां मौन हो जाती हैं तो वह निहारिकाओं में पहुंच गया, अवन्तिकाओं में पहुंच गया। विज्ञान की ऐसी सार्थक शाश्वत वृत्तियां हैं कि जो उसमें संलग्न हो जाता है तो निर्माण करता-करता थकित नहीं होता, वह उसको जानता रहता है। अन्तिम परिणाम यह होता है कि एक तरंग, दूसरी तरंग, जब उनको जान करके उनके परमाणुओं में रत्त हो जाता है तो वेद का ऋषि कहता है, आचार्यों ने कहा कि अन्त में वह प्रभु के ब्रह्मांड की जानकारी में असमर्थ हो करके मौन हो जाता है। निर्माण भी करता है, निर्माण उतना ही कर सकता है जितनी उसकी सीमा है। सीमा में बद्ध हो करके अपने में रत्त हो जाता है, मौन हो जाता है। मौन हो करके वह आगे विचारता है, यह तो सब प्राणों की प्रतिभा कहलाती है।

मेरी माता ने प्रथम मुझे एक अन्न का ग्रास प्रदान किया था और उसने कहा था कि प्राण वृहे व्रतो देवाः, तू प्राणों का निरोध कर। मेरे पुत्रो! जब वह भौतिक विज्ञान से द्वितीय मार्ग को अपनाता है और वह मार्ग कौन सा है? वह उसका मार्ग प्राणों का निरोध है। कहीं प्राण को अपान में लाता है, कहीं अपान को प्राण में समावेश कर देता है, कहीं व्यान को प्राण में समावेश करके, व्यान और समान को उसमें प्रवेश करता हुआ दसों प्राणों का एक समूह बना लेता है और समूह बना करके वह प्रत्येक अब्रहितियों में प्रवेश हो करके, ब्रह्मरन्ध्र में इस प्राण की प्रतिक्रिया को ले जाता है और विचारता रहता है। अब वह विवेकी बन करके विचारता है कि यह जो मैंने अब तक इस ब्रह्मांड को जाना था, यह जो मैंने आकाश गंगा, निहारिका अब तक जानी हैं, वह तो सब प्राण सूत्र में पिरोई हुई हैं। उनका तो सूत्र

ही प्राण है, मैंने प्राण सूत्र को क्यों नहीं जाना? वह प्राण सूत्र में ब्रह्मांड को पिरोया हुआ स्वीकार करके, अन्त में मौन हो करके प्रभु की पगडंडी को प्राप्त करने लगता है। मेरे पुत्रो! मैं बहुत ऊर्ध्वा में विचारों को ले गया हूं। मुनिवरो! माता की भावना कितनी विचित्र है। वह कैसी मेरी पितृ है जो अपने ब्रह्मचारी को वह चाहती है, अपने बाल्य, गर्भ से उत्पन्न होने वाले पुत्र के प्रति कितनी विवेचना, कितनी महानता रहती है कि मेरा बालक इस संसार तक सीमित न रह जाए, वह मेरे तक सीमित न रहे, वह मेरे आंगन से जा करके आचार्यों के गर्भ में रहे और आचार्यों से जब उपराम हो जाए तो प्रभु के आंगन में प्रवेश कर जाए। उसे मोक्ष की पगडंडी को ग्रहण कराने की सुयोग्य माता की पवित्र इच्छा रहती है।

विचार आता है कि पितृ कौन है? वैदिक आचार्यों ने विचारा कि पितृ तो वह है जो देते रहते हैं; देते कौन हैं? यह तो मैंने सूक्ष्म एक वाक् प्रकट किया कि वेद के तीन प्रकार के अंग हैं—लौकिकवाद, विज्ञान और यौगिकवाद। यह तीन प्रकार के अंग प्रत्येक वेद-मंत्रों में दृष्टिपात आ रहे हैं परन्तु जब हम अग्रणीय बनते हैं तो विचार आता है कि पितृ कौन हैं, जो देते हैं। सूर्य भी हमारा पितृ कहलाता है, वह सूर्य प्रकाश देता है, वह नेत्रों को प्रकाशित कर रहा है। चन्द्रमा भी हमारा पितृ है जो अमृत को प्रदान करता रहता है, वह अमृत बहाता रहता है, उसे हम अपने में पितृ स्वीकार करके अग्रणीय बनें। यह पृथ्वी भी हमारी पितृ है क्योंकि गुरुत्व से हमारा यह मानव शरीर गुथा हुआ है। पितृ आपोमयी ज्योति है, आपो को पान करते ही हमें ज्योति प्राप्त होती है। आपो कौन है? जल है, अमृत है। अप्रताम् भविते लोकाम् भवि वृणास्ते, वेद की आख्यिका कहती है कि आपोमयी ज्योति है। इस ज्योति को धारण करो, वही आपो की ज्योति बन करके खाद्य पदार्थों में कृषि उपज रही है। उसमें आपो जब प्रवेश करता है तो वह कृषि को ज्योति बना देता है, वही खनिज पदार्थों को ज्योतिमय प्रदान कर देता

है। वह जल ही है जो पिंड के रूप में अन्नाद को मानव के समीप ला देता है।

मेरे प्रभु का कितना यह विज्ञानमयी जगत है। इसके ऊपर जब हम विचारते रहते हैं तो मुनिवरो! अन्त में मौन हो जाते हैं। कैसा मेरे प्रभु ने यह संगतिकरण आपोमयी बनाया है? यह कैसे पितृ हैं। अश्वताम् देखो, वह गुरुत्व पृथ्वी से आता है और गुरुत्व के परमाणु जब जल में प्रवेश होते हैं तो जल उन्हीं परमाणुओं को पिंड बना देता है। पिंड बना करके वह ज्योति कहलाती है, वह आपोमयी ज्योति है। अन्नाद को मानव पान करता है तो उसे ज्योति प्राप्त हो जाती है। उस ज्योति का स्रोत कौन है? विचार आता है कि उस ज्योति का स्रोत यदि कोई है तो देखो, आपो है, वह आपोमयी अनुपम ज्योति है। उस ज्योति को पान करके मानव अपने क्रियाकलापों में रत हो जाता है। आपो, पिंड बना देती है, उसी पिंड को छिन्न-भिन्न करने वाली वही अग्निमयी उस पिंड का विभाजन कर देती है। वह विभाजन कैसे हो रहा है? जब सृष्टि के पिता ने इस मानव शरीर का निर्माण किया तो गुरु तत्त्व, आपो तत्त्व परमाणुओं का विभाजन अग्नितत्त्व करती रहती थी। मानव के शरीर में परमाणुओं का विभाजन हो रहा है, प्रत्येक पिंड का विभाजन हो रहा है।

जब हम वाह्य जगत में जाते हैं तो वहां भी विभाजन हो रहा है। जो भी कुछ अग्नि में अर्पित कर देता है उसको अग्नि विभाजित कर देती है, विभक्त क्रिया बना देती है। वह विभाजन करके प्राणसूत्र को प्रदान कर देती है। वायुमयी पृथाः, वायु भी हमारा पितृ कहलाता है क्योंकि वह जो विभाजन अग्नि ने किया है वह वायु प्रवेश हो जाता है, उसको गति देने वाली वायु ब्रहे व्रताम् देवाः, वह वायु हमारी पितृ कहलाती है। अप्रतम् ब्रह्माः हृदय असुतो सम्भवा लोकाः, वह अन्तरिक्ष में प्रवेश हो जाती है। वायु भी

तभी तक गति देती है जब तक अन्तरिक्ष उसके द्वारा है तो मुनिवरो! यह अन्तरिक्ष भी हमारा पितृ कहलाता है। मानव के शरीर में देखो, पंचाग्नि अपना प्रकाश कर रही है परन्तु उनके हृदयों में स्थिर हो जाती है, हृदयों में ही साकल्य बन करके रहती है, इसी प्रकार अप्रतम् पृथ्वी, आपो, अग्नि, वायु ही यह सब अन्तरिक्ष में पदार्थों को ले करके अपने-अपने रूप में रत्त रहते हैं तो वह अन्तरिक्ष हमारा पितृ है। अन्तरिक्ष में ही आपो निहित हो जाता है, वृहे है, अश्वत् है, शाश्वत है, अपने में वृही अश्वतो है। विचार विनिमय क्या? यह हमारे पितृ कहलाते हैं।

बेटा! पितृ कौन हुए सम्भवाम् लोकाम्, पृथ्वी भी हमारी पितृ है, आपो जल भी हमारा पितृ है, अग्नि भी हमारा पितृ है, वायु गति देता है वह भी पितृ है, अन्तरिक्ष में हम भ्रमण करते हैं तो वह भी हमारा पितृ कहलाता है। यह पितृ कहलाते हैं, इसलिए हमें पितृयाग करना चाहिए। पितृयाग का अभिप्राय यह है कि हमें यथोचित इनको अपने हृदय में समाहित करके इनका पूजन करना है। पूजन का अभिप्राय यह है कि जिस रूप में वे हैं उसी रूप में हम नम्रता से उसको उपयोग में लायें, उनको अपने में धारण करें, वह उसकी पूजा कहलाती है। मेरे पुत्रो! विचार विनिमय क्या हमें पितृयागी बनना चाहिए, हमें पितृ में प्रवेश करना चाहिए, वह पितृ हमारा कल्याण करने वाले हैं।

माता-पिता हमारे पितृ कहलाते हैं। उनकी भावनाओं के आधार पर हम अपने जीवन को कहीं के कहीं ले जाते हैं, उनके चरणों की वन्दना करते हुए, हम उनकी भावनाओं के आधार पर अपने जीवन को निर्धारित करें। हम अपने ऐश्वर्य में आ करके किसी वस्तु की अवहेलना न कर जाएं। प्रातः कालीन प्रभु से यह याचना की जाए कि हम अपने अभिमान में, द्रव्य की लोलुपता में अवहेलना न करें, क्योंकि जब प्रकृति का अज्ञान तुम्हें

छा जाता है तो यह पितृ की आभा को समाप्त करा देता है। पितृ की विवेचना में, पितृ के द्वार पर जा करके ही वास्तव में हमारा कल्याण होगा। क्योंकि हम अपने मन द्वारा पितृ को अपने समीप लाना चाहते हैं, प्राणसूत्र में पिरोया हुआ यह सर्वत्र ब्रह्मांड एक आभा में गति कर रहा है।

मेरे पुत्रों में पितृ की व्याख्या करने लगूं तो बहुत समय की आवश्यकता है परन्तु आज का विचार तुम्हें प्रतीत हो गया होगा। मैंने तुम्हें पितृ का परिचय दिया है कि पितृ कौन हैं, क्या-क्या हमें देते हैं? सूर्य हमारा पितृ है। सूर्य की नाना प्रकार की किरणें कान्तियों से युक्त रहने वाली हैं परन्तु वह सूर्य हमें क्या देता है? सूर्य से नाना प्रकार की कान्ति आ रही है जिसको अपने में ले करके सूर्य की किरण आभा में नियुक्त होती है तो पृथ्वी के जितने विषैले प्राणी हैं, वह किरणें उनके द्वार पर जाती हैं। किरणों में से उन तरंगों को, वह विषधर विषैले प्राणी विष को ग्रहण करते रहते हैं। यदि यह विष को ग्रहण करने वाले विषैले प्राणी प्रभु के राष्ट्र में न हों तो मानव का जीवन, जीवन नहीं रहेगा।

बेटा! पितृ के सम्बन्ध में तो शेष चर्चा कल ही हो सकेंगी, आज तो मैंने केवल इसकी एक भूमिका बनाई है, विज्ञान की चर्चा तो मैं इससे पूर्वकाल में ही प्रकट करूंगा। आज का विचार विनिमय तो यह है कि हम पितृ के द्वार पर चलें। पितृ कौन हैं, इतना विचार तो महर्षि लोमश मुनि और पिप्पलाद मुनि इत्यादियों की चर्चाओं में हुआ परन्तु शेष ऋषि-मुनियों की चर्चा तो कल ही हम प्रकट करेंगे क्योंकि हम ऐसे ऋषि-मुनियों की स्थिति पर पहुंच गये हैं, जहां उनके विचार बड़े गम्भीर और विचारों में विज्ञान की धाराएं निहित रहती हैं। आज का विचार हमारा यह कह रहा है कि हम परमपिता परमात्मा की आराधना करते हुए प्रभु को अपना पितृ स्वीकार

करें और हमारा लौकिकवाद इतना ऊंचा होना चाहिए कि जिससे हम विज्ञान के गर्भ में चले जाएं। विज्ञान इतना त्यागयुक्त होना चाहिए कि उसमें ही लिप्त न हो जाएं, हम यौगिकवाद में भी चले जायें। यह आचार्यों का एक मन्तव्य रहा है।

बेटा! शेष चर्चा तो मैं कल ही प्रकट करूंगा परन्तु पितृ की विवेचना यह है कि जो देता है, वही पितृ कहलाता है। हमें उनसे लेना चाहिए परन्तु हम शान्त हो करके ले और हमारा क्रियाकलाप इतना ऊर्ध्वा में रहना चाहिए कि जिससे हमारा जीवन पवित्र हो जाए। माता के क्रियाकलापों की चर्चाएँ लोमश मुनि ने अपने विशुद्ध रूपों से की। प्रारम्भ में ही माता तीन प्रकार के ग्रास देती है, वह सबसे प्रथम प्रभुत्व, उसके पश्चात् प्राणत्व और उसके पश्चात् मनस्तत्व। मन संसार के व्यापार को बनाता है, प्राण विज्ञान की धाराओं का निर्माण करता है। प्राण के रूप को ऊर्ध्वा में जान करके वही प्रभु को प्राप्त करा देता है। तो यह है आज का वाक्, आज मुझे इतना समय आज्ञा नहीं दे रहा है, पितृयाग की शेष चर्चा तो मैं कल ही करूंगा। आज का वाक् समाप्त, अब वेदों का पठन-पाठन।

अमृतसर

४-८-१९८५

पितृ कौन हैं-२

देखो मुनिवरो! आज हम तुम्हारे समक्ष पूर्व की भाँति कुछ मनोहर वेदमंत्रों का गुणगान गाते चले जा रहे थे। यह भी तुम्हें प्रतीत हो गया होगा आज हमने पूर्व से जिन वेद मंत्रों का पठन-पाठन किया। हमारे यहां परम्परागतों से ही उस मनोहर वेदवाणी का प्रसारण होता रहता है जिस पवित्र वेदवाणी में उस मेरे देव परमपिता परमात्मा की महती का वर्णन किया जाता है। हमारे आचार्यों ने, मंथन करने वालों ने यह निर्णय लिया है कि हमारा सर्वत्र जो पितृ कहलाता है, वह परमपिता परमात्मा है। हमें जो यह ब्रह्मांड दृष्टिपात आ रहा है, यह उस परमपिता परमात्मा का आयतन माना गया है, यह उसका गृह है। जिस प्रकार मानव का शरीर आत्मा का आयतन माना गया है, आत्मा का गृह है परन्तु वह एक रूप होने से है और वह जो सर्वज्ञ है उसका यह ब्रह्मांड ही आयतन है। आत्मवत् रहने वाला अपने में एक महानता का दिग्दर्शन करता रहता है। मैंने बहुत पुरातन काल में अपना निर्णय देते हुए कहा था कि अपने प्रभु की महिमा का गुणगान गाते हुए हम पितृ की कोटि में आ जाएं। तो प्रत्येक मानव पितृ की कोटि में जाना चाहता है, वह पितृ बनना चाहता है।

मेरे पुत्रो! मैं तुम्हें उसी क्षेत्र में ले जाना चाहता हूँ जहाँ ऋषि-मुनियों का एक विचार विनिमय हो रहा था, ऋषि-मुनियों की वह सभा जहाँ ऋषि-मुनि विद्यमान हो करके पितृ याग के सम्बन्ध में अपना विचार विनिमय करते रहते थे, नाना प्रकार के यागों में चयन करते रहते थे। ऋषि-मुनियों

का एक ही मन्तव्य रहा है कि मानवीय क्षेत्र में आत्म पिपासा के लिए ऐसे क्रियाकलाप होने चाहिए जिससे भविष्य में आने वाला जो समाज है, वह अंधकार में न चला जाए। वह अकाट्य अपने सिद्धांत को नृत्त करने वाले ऋषि-मुनि अपने में अन्वेषण करते, विचार विनिमय करते और विचार यह देते रहते थे कि आत्मा अपने प्रभु के लिए सदैव पिपासी रहती है। इसीलिए हमें नाना प्रकार के यागों का चयन करना चाहिए क्योंकि आत्म तृप्ति याग से पूर्ण होती है। किसी भी प्रकार का याग हो, उसी से मानव के अन्तर्हृदय में शान्ति की स्थापना हो जाती है। मानव अपने में अनुभव करने लगता है कि मुझे एक आनन्दवत् आ रहा है। मानव संसार के नाना प्रकार के भौतिक व्यापार से इतना उच्छणीय हो जाता है, वह इतना अपने में अनुभव करने लगता है कि मैं महादुखी हूं, वह दुख की कल्पना करता है। जब वह याग के समीप जाता है अथवा सुन्दर याग में रत्त होने लगता है तो उसे आत्म शान्ति की स्थापना होनी प्रारम्भ हो जाती है, क्योंकि वह स्वयं पितृ है, पितृ के ही याग में प्रवेश कर गया है।

मेरे प्यारे देखो! विचार आया कि पितृजन कौन हैं? महर्षि लोमश मुनि का यह विचार तुमने श्रवण किया। परन्तु महर्षि कागभुषंड जी से यह प्रश्न किया गया कि महाराज यह पितृ याग क्या है तो महर्षि कागभुषंड जी ने कहा कि भाई! ऋषि ने अभी-अभी जो वर्णन कराया है, मैं इसमें अपना मन्तव्य क्या दे सकता हूं। ऋषियों ने कहा कि नहीं, एक शब्द है उसके अनेकानेक उद्धृत करने के प्रकार कहे जाते हैं। वेद का एक मंत्र है परन्तु उसकी भावार्थ पद्धति भिन्न-भिन्न रूपों में रत्त होती रहती है, तुम अपना कुछ मन्तव्य प्रदान करो। इन्होंने अपना मन्तव्य दिया, अपना विचार दिया है और विचारों में केवल वह कटिबद्धता नहीं आ गई है कि जो इन्होंने उच्चारण किया है, उससे द्वितीय इसकी कोई रचना नहीं हो सकती।

कागधुषंड जी ने ऋषि-मुनियों के वाक्यों को पान करके अपना विचार देना प्रारम्भ किया। उन्होंने कहा कि यह जो पितृ याग का प्रसंग हमारे समीप आता है, जैसा पूर्वकाल में माता को पितृ के रूप में वर्णन किया है परन्तु माता केवल यहीं शान्त नहीं हो जाती है कि वह पितृ बन करके, बाल्य को तीन ग्रास दे करके वह वहीं शान्त हो जाये। एक अनुपम पितृ होने के नाते माता की पिपासा बनी रहती है कि मेरा जो बाल्य ब्रह्मवृता है, यह ब्रह्म की रचना का एक रूप है। जैसे परमपिता परमात्मा, ब्रह्मा ने इस ब्रह्मांड की अनुपम रचना की है, इसी प्रकार माता यह चिन्तन करना प्रारम्भ कर देती है कि यह भी रचना उस मेरे अनुपम ब्रह्मा की है, प्रभु की है तो वह ब्रह्म की उपासना करने लगती है और ब्रह्म की उपासना करते हुए कहती है कि हे भगवन्! यह तेरी रचना का एक नृत्त मेरे समीप आया है और मेरा इससे घनिष्ठ सम्बन्ध इसलिए है क्योंकि यह मेरे गर्भ स्थल में पनपा है। आप की तो रचना है और मैं अपने में यह स्वीकार करूँ कि यह मेरे गर्भ स्थल में पनपा है, यह भी प्रभु! मेरी धृष्टता है परन्तु जब मैं और गम्भीरता में चिन्तन करती हूँ तो प्रभु! यह जो ब्रह्मांड है, यह आपका गर्भाशय है। मैं भी आपके ही गर्भ में पनप रही हूँ, वह बाल्य भी आपके ही गर्भ में पनप रहा है और यह जो देवताजन हैं, यह जो शिशु के रूप में उसकी पालना कर रहे हैं, यह भी आपका ही स्वरूप माना गया है।

जब माता इस प्रकार की विवेकमयी धारा को प्रार्थना के रूप में परिणित कर रही है, बालक उसकी लोरियों का पान कर रहा है, वह उसे भोज्य प्राप्त करा रही है परन्तु माता की पवित्र वेदना है और वह यह चाहती है कि हे प्रभु! तेरा जो रचाया हुआ यह मानव ब्रह्म है यह पवित्र बन जाए जिससे मेरा अन्तरात्मा यह स्वीकार करने लगे कि वास्तव में यह ममत्वम् ममब्रह्मा वाचनं इदन्नमम। क्योंकि इदन्नमम का जो शब्द है वह देवयाग में

हम परिणित करते हैं, इसी इदन्नमम को हम पितृयाग में भी परिणित करते चले जाएं क्योंकि यह मेरा नहीं है, यह सब आपकी प्रतिभा है। इस प्रकार जब माता अपने में शान्त हो करके लोरियों का पान कराती है, वह जो तन्मय होने वाला मन है, शान्त होने वाली प्रतिभा है, वही विचार, वही मनस्त्व की जो शान्त तरंगें हैं, वह बालक के अन्तर्हृदय में प्रवेश हो जाती हैं और बालक में उसी प्रकार के संस्कारों की उपलब्धि हो जाती है।

मेरे प्यारे देखो! यहीं तक नहीं, जब वह तन्दुलों को अग्नि में तपाती है, तब भी यह कहती है कि प्रभु! यह अग्नि भी तेरा ही रूप है। जैसे प्रातःकाल की पवित्र अग्नि मानव को ऊर्जा देती है, प्रकाश भी देती है, आनन्दवत् करा देती है, तो प्रभु इस अग्नि में मैंने अन्न को तपाया है। यह अन्न क्या है? यह अन्न प्रकृति की आभा में रत्न रहने वाला भोज्य है, यह अप्रति है, यह अमृत है। अमृत होने से मन इससे गुथा है, इसे अग्नि अपने में वृत्त करती रहती है। माता कहती है कि हे भवा ब्रह्माः, हे ब्रह्मन्! हे परमात्मन्! मैंने इस अन्नाद को अग्नि में तपाया है, इस अन्नाद में आप एक महानता को भरण कर दो। उस अग्नि को देख करके वह अग्नि में प्रथम ग्रास स्वाहा करती है और कहती है कि हे अग्नि! जैसे तेरे में यह ग्रास भस्माभूत हो गया है, सूक्ष्म परमाणु बन गया है, इसी प्रकार हे अग्नि! तू जठराग्नि बन करके बाल्य के हृदय में, उदर में तू पनप रही है और जब पनप रही है तो जो ग्रास मैं पुत्र को देना चाहती हूँ तो तू जठराग्नि बन करके उसे अपने में ग्रहण कर। तू ज्ञान रूपी अग्नि बन करके, अपने में ग्रहण कर। तू ब्रह्म अग्नि बन करके ब्रह्म को प्राप्त कर, तू तेजोमयी अग्नि बन करके तेजस्वी बन। माता की यह पवित्र भावना रहती है, इसी भावना के साथ वह उस ग्रास को प्रदान करती है।

अशुद्ध अन्न

महर्षि कागभुषंड जी ने कहा कि जब माता मुझे भोज कराती थी तो एक समय पिता ने कहा कि हे देवी! बाल्य अब क्षुधा से पीड़ित हो रहा है तो माता ने कहा कि बाल्य क्षुधा से पीड़ित नहीं है, यह ज्ञान की पिपासा में रक्त होना चाहता है। वह ज्ञान कहां से प्राप्त होगा? हमारे यहां यह आया है कि जो मानव सर्वत्र दनापि दानाम्दन्नमम् ब्रहे व्रताम् देवाः, वेद के आचार्यों ने कहा कि अन्न सर्वस्वः दानम् माना गया है। अन्न को पान करके ही सर्वत्र धाराओं का जन्म होता है। पिता ने कहा कि हे देवी! मैं कौतुक राजा के यहां एक समय भ्रमण करने गया तो राजा कौतुक ने अपने राष्ट्र में यह घोषणा कराई थी कि जितना राष्ट्र का द्रव्य है, वह मेरे कोष में आ जाना चाहिए। प्रजा ने उस अन्न को राजा के कोष में पहुंचाना प्रारम्भ किया और वह राजा के कोष में चला गया। मैं जब बाल्यकाल में अपने पूज्यपाद गुरुदेव के द्वार अध्ययन कर रहा था तो राजा के यहां मैंने उस अन्न को ग्रहण किया, मेरे पूज्यपाद गुरुदेव ने भी किया। सांयकाल को उस अन्न को ग्रहण किया और प्रातःकालीन जब हम साधना करने लगे तो हमारे मन की प्रवृत्ति चंचल बन गई। जब मन की प्रवृत्ति चंचल बन गई तो हमने विचारा कि क्या करें। दोनों ने साधना कांड समाप्त कर दिया और दोनों ने पुनः स्नान किया, जल में प्रोक्षण करके, पुनः जब मार्जन करने के लिए तत्पर हुए तो चिन्तन में, आत्म के आश्रय न रह करके और ही चिन्तन होने लगा। चिन्तन दूषित होने से दूषित तरंगें उत्पन्न होती रहीं तो उस समय हम दोनों भ्रमण करते हुए कौतुक राजा के द्वार पर पहुंचे।

कौतुक राजा ने ऋषियों का स्वागत किया। पूज्यपाद गुरुदेव ने कहा कि प्रभु! हमारा स्वागत तो इससे पूर्व ही हो गया जिससे हमारे मन की प्रवृत्ति अशान्त हो गई है। राजा ने कहा कि प्रभु! ऐसा क्यों? उन्होंने कहा कि तुम्हारे भंडार में हमने जो भोज्य प्राप्त किया था। उस समय राजा कौतुक

ने पाचक से कहा कि तुमने भोजनालय में कैसा अन्न का निर्माण किया था? पाचक ने राजा से कहा कि हे प्रभु! भगवन्! मुझे यह प्रतीत नहीं है कि वह कैसा अन्न है। कौतुक राजा ने जो अन्न को ले करके आए, उससे निर्णय किया और कहा कि वह अन्नाद तुम कहां से लाए? उन्होंने कहा कि प्रभु! राष्ट्र कोष में जो द्रव्य लाया गया, उसी में से लाया गया वह अन्नाद है। निर्णय करने से यह प्रतीत हुआ कि राजा के राष्ट्र में जितने भी द्रव्यपति थे, उन्होंने सुन्दर प्रवृत्ति से द्रव्य संग्रह का प्रयास नहीं कराया। अन्न का निर्माण होना ही हमारा कर्तव्य नहीं है। प्रजा को चिन्तित करके, अपने में भार स्वीकार करके जो राष्ट्र कोष में अन्न आ जाता है तो वह राजा के राष्ट्र को भ्रष्ट कर देता है। यह वही अन्नाद है।

मेरे प्यारे! कौतुक राजा ने ऋषि-मुनियों के चरणों को स्पर्श करके कहा कि प्रभु! यह मेरा ही दोष है। मेरे राष्ट्र में प्रजा का दोष है भगवन्! अब मैं क्षमा चाहता हूं। कौतुक राजा ने जब ऐसा कहा तो मेरे पूज्यपाद गुरुओं ने कहा कि हे राजन्! यह अन्नाद तुम्हारी प्रवृत्ति को भ्रष्ट करेगा और राजा की प्रवृत्ति जब भ्रष्ट हो जाती है तो प्रजा का विनाश हो जाता है। ऐसा नहीं होना चाहिए। राजा ने कहा कि प्रभु! मैं तो इस अन्न को ग्रहण करता ही नहीं हूं। मैं तो स्वयं कला कौशल करके ही उस अन्न को उत्पन्न करके पान करता हूं। उन्होंने कहा कि राजन्! यह तो यथार्थ है, जब हम तुम्हारे अतिथि बन करके आये तो तुमने अपने अन्न में से ही क्यों भोज्य नहीं कराया। राजा ने कहा प्रभु! मुझे आपका प्रतीत नहीं था, आपका मेरे से मिलन नहीं हुआ। आप राजगृह में चले आते राजलक्ष्मी तुम्हें उस अन्न को ग्रहण करा देती। उन्होंने कहा कि हे राजन्! हमने ऐसा नहीं विचारा क्योंकि इससे पूर्व हम कई समय तुम्हारे अन्न को ग्रहण कर गये थे और उस अन्न को ग्रहण करके हमारी बुद्धि प्रखर बनी रही। एक तरंग नहीं, दो तरंग नहीं, नाना प्रकार की शुद्ध तरंगें उत्पन्न होती रहतीं तो राजन् हमने यह जाना नहीं

था कि तुम्हारे राष्ट्र में ऐसा भी होता है। कौतुक राजा ने कहा कि भगवन्! अब मैं क्षमा चाहता हूँ। प्रभु! चलो मेरे राष्ट्र गृह में तुम्हारा प्रवेश हो।

हम दोनों राष्ट्रगृह में पहुँचे। राष्ट्रगृह में देवी से कहा कि देवी! मेरे पूज्य ऋषि-मुनियों की अन्तरात्मा में अशुद्ध अन्न ग्रहण हो गया है, मन की धाराओं का जन्म हुआ है और वह जो मन की धाराएं हैं, वह अशुद्धवाद में परिणित हो गई हैं। देवी! इनको अन्न का ग्रहण कराओ। देवी ने कहा कि प्रभु! मैं इस प्रकार अन्न को ग्रहण नहीं कराऊंगी क्योंकि वह अन्न दमन हो जायेगा और उस अन्न की तरंगें जब दमन हो जायेंगी तो किसी न किसी रूप में वह पुनः उभर करके, पुनरुक्तियों में आ करके इनकी तरंगों में पुनः आ करके दूषित वायुमंडल को प्रदान करेंगी तो भगवन्! मैं इन ऋषि-मुनियों को आज भोज नहीं कराऊंगी। मुनिवरो! मेरे पूज्यपाद गुरुदेव ने कहा तो देवी! हम क्या करें? उन्होंने कहा कि तुम उपवास करो और उपवास करके तुम लगभग सूर्य उदय होने से अस्त होने तक वेद का अध्ययन ध्वनि से करो जिससे तुम्हारा वह परमाणुवाद वेद की ध्वनि के साथ में मिश्रित हो जाए।

कागभुषंड जी कहते हैं कि मेरे पूज्य पिता यह कहा करते थे कि मैंने और मेरे पूज्यपाद गुरुदेव ने इस प्रकार का अनुष्ठान किया। जल को अपने समीप ले करके वेद मंत्रों की तरंगें जल को ही स्पर्श करके जाती थीं तो उसी जल का पान करना और वेद का अध्ययन करना, जटा पाठ, घन पाठ में गाना। मध्य में भी मन की प्रवृत्ति चंचलवत् बन गई थी, वे संस्कार पुनः भी उभर करके उनके समीप आए। तो मुनिवरो ऐसा कुछ उन्होंने कहा कि मंगलम् ब्रह्मे ब्रताम् मम्भवा सम्वेतु, वेद को अध्ययन करके शान्ति को प्राप्त हुए। वह पूर्णिमा का दिवस था। रात्रिकाल में देवी ने कहा कि हे प्रभु! आप ऋषि हैं, आप साधक हैं, हम तो संसार के प्राणियों के प्रति

साधना करते हैं; आप आत्म चिन्तन करते हुए प्रभु को प्राप्त करने के लिए साधना करते हो। तो हे प्रभु! रात्रि के समय तुम पूर्णिमा के चन्द्रमा को निहारते रहो और उसमें प्रभु की कृति को दृष्टिपात करते रहो। पूज्यपाद गुरु ने वही किया। उसके पश्चात् उनके हृदय की वह अशुद्ध तरंगें समाप्त हो गई और प्रातः काल जब राजगृह में प्रवेश हुआ तो देवी ने मंत्रों की ध्वनि के साथ ऋषि-मुनियों के लिये अन्न का निर्माण किया और उसको अग्नि में तपा करके पान कराया।

माता यह कहती थी कि मेरा हृदय पवित्र बन जाए और मेरे हृदय की तरंगें ऋषि-मुनियों के हृदयों में प्रवेश हो जाएं जिससे यह भविष्य में उनकी साधना में परिणित हो जाए क्योंकि यदि राजा के राष्ट्र में ऋषि समाज में भी अशुद्धवाद आ जाता है और तरंगें अशुद्ध बन जाती हैं तो राजा के ऊपर यह भार बन जाता है, यह राजा की धृष्टता बन जाती है। उस देवी ने, माता ने जब भोज्य कराया तो माता ऋषि-मुनियों के प्रति कैसी भावना व्यक्त करने वाली है। वह यह चाहती है कि मेरा पति और मेरे राष्ट्र में जो समाज है यह पवित्र बन जाए। प्रजा के लिए राजलक्ष्मियां पितृ कहलाती हैं, राजा पितृ कहलाता है, जो वास्तव में राजा होता है वह पितृ कहलाता है। मैं इन वाक्यों को सूक्ष्मवाद में कहां ले जाऊंगा, यह तो बड़ा विचित्र सूक्ष्मवाद का वन है। मैं इस वन में जाना नहीं चाहता हूं, तुम्हें परिचय देना चाहता हूं।

कागभुषंड जी ने कहा कि मुझे जब पिता ने निर्णय कराया तो मैंने उसी समय से अपनी साधना के लिए उत्तम अन्नाद को ग्रहण करना प्रारम्भ किया। उस अन्न के ग्रहण करने से साधना बनी रहती थी। वह पितृ जन हैं पितृ के द्वार पर जाने से पितृ की भावना पितृ के समीप पहुंचा देती थी। वह परमात्मा पितृ बनता है, संसार के दामन में माता ही पितृ बन

करके अपना क्रियाकलाप करती है। कागभुषंड जी ने कहा कि मेरे पिता का तो यह निर्णय हुआ है कि राजा भी पितृ कहलाता है, राजलक्ष्मियां भी पितृ कहलाती हैं। सम्भूति ब्रह्म लोकाम्, यह निर्णय दे करके मुनिवरो देखो! कागभुषंड जी जब मौन हो गये तो महर्षि प्रह्लाण ने कहा कि भगवन्! कागभुषंड जी और लोमश जी का निर्णय बहुत ही विचित्र रहा है परन्तु पितृयाग के सम्बन्ध में और कोई निर्णय देने वाला हो, अपनी विवेचना करने वाला हो तो उपस्थित हो सकता है।

इतने में ही मुनिवरो! महर्षि वैशम्पायन उपस्थित हो गये और उन्होंने कहा कि भगवन्! यह जो पितृयाग हम करने के लिए तत्पर हैं, वनों में हम विराजमान हैं, पितृयाग के सम्बन्ध में तो एक ही वाक् आता है कि जो इसकी रक्षा करने वाला है, वह हमारा पितृ है। पितृं ब्रह्म वाचाः, जैसे कागभुषंड जी ने राजा, राजलक्ष्मी को और परमात्मा को पितृं से गूथ दिया है, इससे अधिक तो कुछ उच्चारण करने के लिए शेष नहीं रहा है परन्तु जैसा मैंने भी अध्ययन किया है, उसी के आधार पर मैं अपनी विवेचना प्रकट करूंगा। यह सम्भूति ब्रह्म वाहाः वैशम्पायन ने कहा कि प्रभु! एक समय मैं याग कराने के लिए महाराजा अश्वपति के यहां पहुंचा। जब वृष्टि नहीं हो रही थी तो महाराजा अश्वपति ने मुझे निमन्त्रित किया और यह कहा कि भगवन्! मेरे राष्ट्र में वृष्टियाग होना चाहिए। मुनिवरो! महर्षि वैशम्पायन बोले कि मैं जब उनके राष्ट्र में पहुंचा तो वह अपनी पत्नी से यह उच्चारण कर रहे थे कि हे देवी! ऋषिवर का आगमन होने वाला है। परन्तु उनको अन्न के लिए भी तो सम्बोधित करना है। तो राजलक्ष्मी बोली कि प्रभु! उनके लिए अन्न पर्याप्त है। राजा यह उच्चारण कर रहे थे कि ऋषि राष्ट्र के प्राण होते हैं क्योंकि राजा के राष्ट्र को यदि कोई सजातीय बनाता है तो बुद्धिमान बनाता है अतः अन्न पवित्र होना चाहिए।

उस समय राजलक्ष्मी ने कहा कि हे भगवन्! मैं छः माह से सूर्य की प्रार्थना कर रही हूँ, सूर्य देव की आराधना कर रही हूँ और उसकी कान्ति में विद्यमान हो करके मैं यह चाहती थी कि मेरा हृदय तेजोमयी बने। कौतुक मुनि महाराज ने मुझे बाल्यकाल में एक समय निर्णय करा दिया था कि पीपल के वृक्ष में सूर्य की प्रतिभा विशेष होती है, एक ऋवासीकेतु वृक्ष होता है उसमें भी सूर्य की किरणें विशेष होती हैं, मैं उसका रस ले-ले करके, पांचांग बनाती रही हूँ और सूर्य की किरणों में तपा-तपा करके पवित्र भूमि में जो हमारे यहां अन्नाद उत्पन्न होता है, उसे पीपल के रस में खरल करके उसको मिलान करती हुई मधुमक्खी का मधु ले करके मैंने अपने ऋषि के लिए इस अन्नाद को उत्पन्न किया। जब यह चर्चा हो रही थी तो इतने में ही हमारा आगमन हुआ तो राजा ने यज्ञशाला में पदार्पण कराया कि आइये भगवन्! वृष्टियाग करना है क्योंकि वृष्टि नहीं हो रही है। उस समय राजा भी उस अन्न का पान कर रहा है, पुरोहितजन भी उसी अन्न को पान कर रहे हैं, उद्गाता, अध्वर्यु भी उसी को पान कर रहे हैं।

वनों में से औषध विज्ञान द्वारा साकल्य एकत्रित करके जब वह याग किया गया तो उसी के मध्य में चाक्राणी ऋषि आ पहुंची। चाक्राणी ऋषि ने कहा कि क्या कर रहे हो भगवन्! उन्होंने कहा कि हम पितृयाग कर रहे हैं, हम पितृ की उपासना करके वृष्टियाग चाहते हैं जिससे वह पितृ हमें वृष्टि प्रदान कर दें। उसी समय वैशम्पायन ने कहा कि सम्भूति ब्रह्मवाचा देवोब्रह्मे, हे ऋषिवर! अब आप याग की व्यवस्था का निरीक्षण कर लीजिए। उन्होंने याग का निरीक्षण किया तो वास्तव में वह पितृ याग हो रहा था। जो ऋषि-मुनि, आचार्य होते हैं, वे राष्ट्र के पितृ हैं और राजा प्रजा के लिए पितृ है जो अपनी प्रजा के लिए वृष्टि की कामना करता है। मुझे कुछ ऐसा स्मरण है कि ऋषि और होताजनों ने याग किया तो मेघों की उत्पत्ति हो

गई, धीमी-धीमी वृष्टि प्रारम्भ हो गई। पृथ्वी ने विष उगलना समाप्त कर दिया, अमृतमयी बन गई, नाना प्रकार के व्यंजनों वाली बन गई।

विचार विनिमय क्या कि वेद के ऋषि वैशम्पायन ने कहा कि प्रभु! हमारे यहां जैसे माता को हम पितृ कहते हैं, पितृओं को पितृ कहते हैं, राजा को भी पितृ कहते हैं परन्तु इसी प्रकार हम याग को भी पितृ कहते हैं। जब यह वाक् ऋषि ने प्रकट किया तो सब आनन्दवत् हो गये। वैशम्पायन ने अपनी विवेचना में कहा कि याग भी हमारा पितृ है, वह देव याग ही नहीं है, वह पितृ याग भी कहलाता है, पितृओं से जिसका समन्वय रहता है। महर्षि वैशम्पायन ने कहा कि इसलिए ऋषि-मुनि भयंकर वनों में, पर्वतों की गुफा में आत्म चिन्तन करते रहते थे, वे उस अन्न का पान करते थे जिस पर किसी का अधिकार नहीं था। उस अन्न को पान करने से बुद्धि प्रखर रहती है, बुद्धि ऊर्ध्वा में उड़ान उड़ने वाली रहती है। उन्होंने कहा कि प्रभु! जहां माता हमारी पितृ है, राजा पितृ है वहां ब्रह्म वाचो ब्रह्मे व्रताः, यह याग भी हमारा पितृ कहलाता है। ऋषि वैशम्पायन यह उच्चारण करके मौन हो गये।

इतने में महर्षि प्रव्हाण मुनि उपस्थित हुए और उन्होंने कहा कि और कोई ऋषि है, जो पितृयाग के सम्बन्ध में अपना मन्तव्य देने वाला हो तो ब्रह्मवाचो वृहे महर्षि साकल्य मुनि महाराज उपस्थित हुए। महर्षि साकल्य मुनि ने कहा कि जो वैशम्पायन ने अभी-अभी अपना विचार दिया है इसके आगे वाक् उच्चारण करने को कुछ रह नहीं गया है परन्तु जब तुमने मुझे आज्ञा दी है तो मैं भी इन यागों के सम्बन्ध में कुछ अपना विचार दे सकता हूं। उन्होंने कहा कि मैं तत्त्व मुनि महाराज के यहां अध्ययन करता रहा हूं। एक समय हम सब ब्रह्मचारियों ने अपने पूज्यपाद गुरुदेव को निमंत्रित किया और उनसे प्रश्न किया कि महाराज यह पितृयाग क्या है? हमारे यहां

कहीं-कहीं पितृ में यह सूर्य भी आता है, इसका हम याग करना चाहते हैं, सूर्य कैसे पितृ बनेगा? तो उस समय महर्षि तत्त्व मुनि महाराज ने कहा कि सूर्य की नाना प्रकार की किरणें आती रहती हैं, नाना प्रकार की धाराएं आती रहती हैं, यह हमारा पितृ कहलाता है और यह कैसे पितृ कहलाता है? यह जो हम पृथ्वी पर रहने वाले प्राणी हैं, यह सब अपनी प्रत्येक इन्द्रियों से गन्ध को अथवा विष त्यागते रहते हैं, विष पृथ्वी में प्रवेश करते हैं तो यह पृथ्वी विष उगलने लगती है। जब पृथ्वी विष वमन करने लगती है तो सूर्य इसके वमन किये तरंगों को अपने में ग्रहण करने लगता है। किरणों के द्वारा वह तरंगें, वह परमाणु चले जाते हैं और वह परमाणु, वह जो धाराएं हैं उन्हें जितने भी पृथ्वी पर विषधर प्राणी हैं, चाहे वह सर्पराज हों सर्पराजों की कोटि में कोई भी विषधर प्राणी हों परन्तु वह सूर्य की किरणों को लेते हैं। किरणों को ले करके वह उन किरणों में से विष को अपने में ग्रहण कर लेते हैं, पृथ्वी में से विष को ले लेते हैं और अमृत को प्रदान कर देते हैं। जब वह अमृत को प्रदान कर देते हैं तो सूर्य की आभा में वह तपते रहते हैं।

तपायमान हो करके सूर्य हमारा पितृ कहलाता है। सूर्य के आंगन में वैदिक आचार्यों ने एक रूपान्तर बनाया, अलंकारिक रूपों में एक रूप रेखा बनाई कि सूर्य द्यौ के द्वार पर पहुंचा और द्यौ से जब प्रकाश और ऊर्जा को लेने लगा तो उस समय द्यौ ने कहा कि हे सूर्य! यह तुम क्या कर रहे हो? सूर्य ने कहा कि सम्भवा भावा सम्भो भावाम् ब्रहे ऊर्ज्वाम् वृहे, मैं तेरे से ऊर्जा को ले रहा हूं। प्रभु! मैं तेरा पुत्र हूं, मैं तेरे समीप आया हूं, भगवन्! तेरा कितना विशालतम में विज्ञान है। वह सूर्य पितृ कहलाता है। शिशु की एक बिन्दु में भी सूर्य की किरण विद्यमान हैं, वह बिन्दु माता के गर्भ में पहुंचा, वहां भी उस बिन्दु को, शिशु को प्रकाश में विभाजित कर देता है और माता उस मेरे देव से वंचित है, वह पितृ बन करके तपा रहा है, प्रकाश

दे रहा है। मुनिवरो! वही प्रकाश बन करके वाह्य जगत् में आ जाता है। तू कैसा अनुपम पितृ है, तू कैसा पितृ बना हुआ है।

देखो! जब इस पृथ्वी पर नाना प्रकार के पापाचरण होने लगते हैं तो उस समय सूर्य समुद्रों से कहता है कि हे समुद्र! तुम अग्नि बन कर मेरे में प्रवेश कर जाओ तो सूर्य द्यौ से अपनी किरणों के द्वारा सम्मिलान करके वहां बड़वानल नाम की अग्नि बन करके समुद्रों में अग्नि प्रदीप्त हो जाती है। राजा के राष्ट्र में नाना प्रकार के पापाचरण को पृथ्वी के गर्भ में प्रवेश करके, वह जलप्लावन का रूप धारण कर लेता है। वही तो जलप्लावन लाता है। मुनिवरो देखो! वह कैसा पितृ है जो समय-समय पर दंडित करता रहता है, अपनी आभा में नृत्त करता रहता है। वह पितृ हमारे लिए कितना कल्याण कारक है, हमें अपनी संरक्षणता में, अपने में धारण करके नाना प्रकार की किरणों के द्वारा हमें ओजस्वी बनाता है, तेजोमयी बनाता है। मैं विचार दे रहा हूँ कि सूर्य हमारा पितृ है।

आचार्यों ने अपना विचार वर्णन करते कहा है कि विषधर प्राणी भी तो पितृ कहलाते हैं क्योंकि वह विष को अपने में धारण कर हमें अमृत प्रदान करते हैं। महर्षि साकल्य मुनि ने कहा कि हे मुनिवरो! मेरे विचार में तो यह आता है कि विषधर प्राणी से ले करके किरणों तक जो सूर्य आभा में रत्न रहने वाला है, वह हमारा पितृ कहलाता है। यह वाक् उच्चारण करके साकल्य मुनि महाराज अपने में समाहित हो गये और उन्होंने कहा कि मेरे विचार में तो यह सर्वत्र, देखो सर्प भी हमारा पितृ है, सर्प के अंग-संग रहने वाले विषैले प्राणी जो पृथ्वी के गर्भ में रहते हैं, उसी पृथ्वी के गर्भ में खनिज तप रहा है, खाद्य तप रहा है, वहीं जल तपायमान हो करके अपने वाहन क्रियाकलाप कर रहे हैं। विचार विनिमय क्या कि वेद का आचार्य यह कहता है कि यह सब हमारे पितृ हैं। सूर्य इन सब पितृओं का पितृ कहलाता

है क्योंकि वह सबकी संरक्षणता में रहता है। मैं कोई वक्तव्य देने नहीं आया हूँ, केवल तुम्हें सूक्ष्म रूपों से एक परिचय देने के लिए आया हूँ। वेद के ऋषि ने कहा है कि सम्भवा लोकाम् पितृश्चमा वाचन्मः, हम पितृओं के रूप में इनकी उपासना करने वाले बनें परन्तु अभिप्राय वही है जो महर्षि लोमष ने कहा कि **रक्षा करने वाले को पितृ कहते हैं** और पितृ शब्द की अनेक प्रकार से विवेचना की जा सकती है। यह विवेचना दे करके साकल्य मुनि महाराज मौन हो गये, तीनों ऋषि अपने-अपने वाक् को प्रकट करके अपनी-अपनी स्थलियों पर विद्यमान हो गये और मौन हो करके न्यौदा में मंत्रों का उच्चारण करके शान्ति का दान प्राप्त करने के लिए उन्होंने प्रभु से याचना की।

बेटा! आज का वाक् समाप्त हो गया। मैं कल भी पितृयाग के सम्बन्ध में विचार दूंगा। आज के वाक् उच्चारण करने का अभिप्राय यह है कि हम परमपिता परमात्मा की आराधना करते हुए, देव की महिमा का गुणगान गाते हुए इस संसार सागर से पार हो जाएं। मंगलम् ब्रह्मे देखो, मैं मंगलमय कामना कर रहा हूँ कि हम पितृओं की विवेचना में रत्त रहें क्योंकि प्रत्येक आभा में पितृ ही पितृ विद्यमान हैं। हे प्रभु! आप तो सर्वत्र पिता हैं, आपकी उपासना करते हुए पितृओं की विवेचना में रत्त हो गये हैं, समय मिलेगा तो शेष चर्चाएं कल प्रकट करेंगे। आज का वाक् समाप्त, अब वेदों का पठन-पाठन।

अमृतसर

५-८-१९८५

पितृ यज्ञ

देखो मुनिवरो! आज हम तुम्हारे समक्ष पूर्व की भाँति कुछ मनोहर वेदमंत्रों का गुणगान गाते चले जा रहे थे। यह भी तुम्हें प्रतीत हो गया होगा आज हमने पूर्व से जिन वेद मंत्रों का पठन-पाठन किया। हमारे यहां परम्परागतों से ही उस मनोहर वेदवाणी का प्रसारण होता रहता है जिस पवित्र वेदवाणी में उस मेरे देव परमपिता परमात्मा की महती का वर्णन किया जाता है क्योंकि वे परमपिता परमात्मा पुरोहित हैं, वे वरणीय माने गये हैं। जो भी मानव उसे वर लेता है वह प्रायः उसी को प्राप्त हो जाता है। तो इसीलिए वेद की आख्यिका कहती है कि हे मानव! तू उस परमपिता परमात्मा को अपना वरणीय बना अथवा उसे वरने वाला बन। उसे जो अपना वरणीय बना लेता है, उसकी आभा में वह रत्न हो जाता है। वेद का मंत्र यह कहता है कि वरुणो ब्रहे व्रणा, तू उसको वरण कर। जैसे यज्ञशाला में यजमान ब्रह्मा का वरण करता है और उसे वर लेता है, इसी प्रकार हम परमपिता परमात्मा को अपना वरणीय बनायें और वरने वाला बना करके उसी को प्राप्त हो जाएं। ऐसी हमारी वेद की एक आख्यिका कहती है।

आज का यह हमारा विचार क्या कह रहा है, हम रहस्यतम गम्भीर विचारों की मुद्रा में परिणित हो जाते हैं। आज का हमारा वेद मंत्र कहता है कि इन्द्रोभो, तू दया की और महानता की वृष्टि कर जिससे हम सोम को पान करते रहें। परन्तु सोम के सम्बन्ध में ऋषि-मुनियों की भिन्न-भिन्न प्रकार की उड़ान हैं। साधारण प्राणी भी सोम की कल्पना करता है। मेरी

प्यारी माता भी अपने बाल्य से कहती है कि तू सोम का पान कर। स्वयं भी सोम को अपने में धारण करना चाहिए। वाक् तो बड़ा प्रियतम माना गया है। वेद का आचार्य कहता है कि हे मानव! तू अपनी मानवीयता को ऊंचा करके सोम का पान कर। परन्तु सोम कहते किसे हैं? हमारे यहां जो वास्तविक सोम है उसका तो ऋषि-मुनि ही पान करते हैं। वह नाना प्रकार के वृक्षों का पांचांग पान करके योगाभ्यास में आरूढ़ हो जाते हैं, मन और प्राण दोनों की सन्धि करने में लगे रहते हैं। जब दोनों की सन्धि हुई तो आत्मा और परमात्मा की भी सन्धि हो जाती है। वहां सन्धि होने पर जो आनन्दमयी सोमरस योगी को प्राप्त होता है तो वह आनन्द, वह सोम अपने में एक महान बन करके रहता है।

मैं सोम की विवेचना तो देने नहीं आया हूं परन्तु आयुर्वेदाचार्यों ने इस सोम की कल्पना की है। हमारे यहां नाना वैद्यराजों के दर्शनों से यह प्रतीत हुआ है कि वह भी अपनी औषधियों का सोमरस बनाते और उनके मनों की प्रवृत्तियां ऊर्ध्वा गति में रत रही हैं, ऊर्ध्वा में उड़ान उड़ती रही हैं। हमारे यहां सर्पकेतनी एक औषध होती है, जिसका ऋषि-मुनि, साधकजन आसन बनाते हैं और अपनी सिद्धियों को प्राप्त हो जाते हैं। उस आसन में पृथ्वी की विद्युत को अपने में सिंचन करने वाली औषधियां होती हैं और जब मानव उसका आसन बनाता है तो वह तरंगों में परिणित हो करके तरंगित होता रहता है। हमारे यहां आसन का बड़ा प्रभाव होता है। किसी औषधि में विद्युत की विशेषतायें होती हैं, विद्युत उसमें हरण वृत्तियों में परिणित हो जाती है। मैं इस सम्बन्ध में कोई विशेष विवेचना देने नहीं आया हूं कि मैं सोम की गाथा गाता रहूं। पूज्यपाद गुरुजन शिष्य को अपने चरणों में ओतप्रोत करा करके सोम का पान कराते रहे हैं। माता अपनी लोरियों का पान करा करके सोम का पान कराती रही है।

मेरे प्यारे! आज का हमारा वेद मंत्र कुछ कह रहा है, सोम की गाथा आ रही है परन्तु आओ! मैं तुम्हें उसी क्षेत्र में ले जाना चाहता हूँ जहाँ ऋषि-मुनि अपना विचार देते रहते हैं और वह यह जानते हैं कि हम अकाट्य विचार को देंगे और इन विचारों को जब यह मानव मानेगा तो इसका विनाश नहीं होगा। हमारे इन मन्थन किये विचारों में मंथना बृहे ब्रह्मा, काटने की शक्ति नहीं होगी तो रूढ़ि भी नहीं बनेगी क्योंकि प्रायः ऐसा होता है कि जो महापुरुष बिना तपस्या के अपने स्वार्थ के कारण अपने अधूरे ज्ञान के आधार पर वह परमात्मा को अपना आश्रय न बना कर जो घोषणा करते हैं उसमें रूढ़ि का सन्देह बना रहता है। ऋषि-मुनि अपने मन्थन में लगे रहते हैं। एक से एक तपस्वी अपने आसन पर एकत्रित हो करके अपने-अपने मन्थन किये हुए विचारों को व्यक्त करते रहते हैं। इससे पूर्वकाल में ऋषि-मुनियों के अकाट्य विचार तुमने श्रवण किये हैं जिसको एक दूसरे से समन्वय करते हुए, एक दूसरे की धारा एक दूसरे में परिणित हो करके ही उसका ओजस्तव बन जाता है। मुनिवरो देखो! मैं तुम्हें उसी क्षेत्र में ले जा रहा हूँ जहाँ ऋषि-मुनियों का विचार विनिमय हो रहा है, एक पितृयाग की चर्चाएं चल रही हैं।

पितृयागों की चर्चाओं में मैंने एक ही शब्द को उद्बुद्ध किया है, जो रक्षा करने वाला है वह पितृ कहलाता है। उसका विस्तार, उसकी भूमिका बनाने में हम यह जानने को उत्सुक रहते हैं कि हमारे कितने पितृ कहलाते हैं और उन पितृ में महानता की प्रतिभा अपने में प्रकाशित होती रहती है। यह वाक्, ऋषि-मुनियों के द्वारा एक विचाराधीन बना रहता है और यह कहते रहते हैं कि पितृ कितने प्रकार के होते हैं, कौन-कौन हमारे पितृ हैं? इसके ऊपर हम अपने विचारों को व्यक्त कर रहे थे, ऋषि-मुनियों ने अपने विचार दिये हैं। इससे पूर्वकाल में हम उच्चारण कर रहे थे कि सूर्य हमारा पितृ कहलाता है और सूर्य के संरक्षण में रहने वाले विषधर भी

हमारे पितृ कहलाते हैं। ऐसा एक वाक्य आया परन्तु ऋषि प्रव्हाण पुनः उपस्थित हो करके बोले कि महाराज! ऋषि ने अपना विचार तो हमें व्यक्त कराया है और हम बड़े प्रसन्न हैं परन्तु और भी ऋषि-मुनि विद्यमान हैं, वे पितृयाग के सम्बन्ध में अपने-अपने विचार व्यक्त कर सकते हैं। जैसे विश्वामित्र ने पितृयाग के सम्बन्ध में सूर्य को पितृ माना है तो और भी किसी का मन्तव्य, अपना विचार हो तो व्यक्त करे।

मेरे पुत्रो! सभा में महर्षि वशिष्ठ मुनि महाराज और माता अरुन्धति भी विद्यमान थी। माता अरुन्धति ने उपस्थित हो कर कहा कि हे ऋषियो! तुम सब ब्रह्मवेत्ता हो, तुम पितृ याग के सम्बन्ध में अपना-अपना विचार दे रहे हो, वेद का जो मन्थन किया हुआ वाक् है उसे उच्चारण कर रहे हो। मेरे विचार में यह आता है कि जितना भी यह संसार है, इस ब्रह्मांड की आभा में जितना भी यह क्रियाकलाप हो रहा है, वह सर्वत्र एक दूसरे में गुथा हुआ होने से ही पितृ कहलाता है। हमारे आचार्यों ने, पूर्व विचारवेत्ताओं ने अपना विचार दिया है कि सूर्य एक पितृ है और नाना प्राणी भी हमारे पितृओं का क्रियाकलाप करते रहते हैं। जैसे मछली जो जल में रहने वाला प्राणी है, वह प्राणी कैसा विचित्र है। उसी में सांस लेता है, उसी में आहार करता है, उसी में उम्मींच करता है, परन्तु वह कैसा विचित्र है कि जल में किसी भी प्रकार का विष हो, उसे वह अपने में पान करता रहता है। तो विचार आता है कि समुद्रों में नाना प्रकार के प्राणी रहते हैं, वह विष को आहार करते हैं और अमृत को प्रदान कर देते हैं। मेरे प्रभु का कैसा यह विधान है कि एक मानव बन करके कर्म कर रहा है, उसके कर्मों में निकृष्टता आ जाती है तो उसे अपने जन्मों में निकृष्ट योनियां प्राप्त होती हैं। परन्तु निकृष्ट प्राणियों में भी प्रभु ने क्या ओतप्रोत कर दिया है कि उसका स्वाभाविक गुण बना दिया है कि वह अपना कोई न कोई परोपकार को ले करके आता है, वह दूसरों के लिए कुछ देता है। यह कैसी मेरे प्यारे प्रभु की विचित्रता है?

मेरे पुत्रो! समुद्रों में रहने वाला एक प्राणी मछली है और भी नाना प्रकार के प्राणी हैं, परन्तु वे अमृत देते हैं और वह विष को आहार कर जाते हैं। पृथ्वी के ऊपर जो प्राणी रहता है यह विष उगलता है, पृथ्वी विष वमन करती है और वह तरंगों समुद्रों में जाती हैं। जल में यह विशेषता रहती है कि यह तीक्ष्ण तरंगों को अपने में सिंचन कर लेता है, अपने में ग्रहण कर लेता है। इसीलिए हमारे यहां यज्ञशाला में वरुण का पूजन होता है, कलश का पूजन होता है। कलश का अभिप्राय है कि कलशम् वृही वृणअस्वसते, उसका पूजन करता है। ब्राह्मण कहता है कि हे वरुण! तू हमारा कल्याण करने वाला है। यज्ञशाला में ईशान कोण में कलश स्थापित किया जाता है क्योंकि वहां से प्रकाश आता है। जब प्रकाश आता है तो व्रणावृहे कलश में जल है उसमें से प्रातःकाल सूर्य की किरणें कुछ दोषों को ले करके गमन करती हैं तो जल का वह कलश उन दोषों को सिंचन करता है। अग्नि में जैसे ही यजमान, होताजन आहुति देते हैं, अग्नि जिस विष को उगलती है, उसको वह जल अपने में ग्रहण कर लेता है। वह आपो कहलाता है, वह उसका शोधन करता है।

इसी प्रकार जो भी हम प्राणीमात्र विष उगलते हैं उसको वह समुद्र अपने में ग्रहण कर लेता है, जल अपने में सिंचन कर लेता है। उसी जल में रहने वाला जो प्राणी मछली है वह अपने में ही अपनेपन में लय हो रही है, वह विष को अपने में सिंचन कर रही है, श्वासों के द्वारा अमृत दे रही है, जल का शोधन हो रहा है। जल का जब शोधन होता है तो अनावृष्टि नहीं हुआ करती है, समय-समय पर वृष्टि होती है। प्रभु की कैसी विचित्र रचना है कि मछली ने कर्म तो निकृष्ट किये हैं, निकृष्ट काम करके मछली का जीवन प्राप्त हुआ है परन्तु वाह रे मेरे प्रभु! तू कितना विचित्र है कि उसके कर्मफल जल में वास करने के हैं, उसकी इन्द्रियों का भी निर्माण नहीं हुआ है परन्तु उसके पश्चात् उसमें एक गुण प्रदान कर दिया है कि

वह विष को अपने में ग्रहण करती रहती है, जल का शोधन करती रहती है। वाह रे मेरे प्रभु! जल के शोधन के लिए आपने कैसे-कैसे प्राणियों का निर्माण किया है। अनन्य प्राणी हैं जो समुद्रों के आंगन में गमन करते हैं और विष को अपने में सिंचन करते रहते हैं। यदि यह प्राणी समुद्रों में न हों तो अन्य प्राणी एक क्षण भर भी संसार में श्वास नहीं ले सकते।

मुनिवरो! सम्भोते ब्रह्मा, ऋषि-मुनियों की सभा में माता अरुन्धति ने यह वाक् वर्णन किया और उन्होंने कहा कि यह जो मानव ब्रह्मे अस्वातन है, यह जो समुद्र है, उसमें कैसा प्राणी रहता है। यह पितृ की कोटि में तो आता नहीं परन्तु यह पितृ से सूक्ष्म भी नहीं। उन्होंने कहा कि भगवान् मनु की नौका की जल-प्लावन में रक्षा करने वाली मछली ही थी। अब का तो मुझे प्रतीत नहीं है परन्तु समुद्रों में सींग वाली एक विशाल मछली होती थी। देखो, उसने अपने सींग से नौका को जकड़ लिया था। जल-प्लावन में मछली ने ही रक्षा की तो इसीलिए जो रक्षा करने वाला है उसको पितृ की कोटि में नियुक्त किया गया है। देखो, वह कोटी ब्रह्मे वाचन् माना गया है। हमारे आचार्यों ने यह कहा कि हे मंगलम्, हे मानव! तू अपने जीवन को मंगलमय बना और उस आहार को कर जो वास्तव में मानव का आहार है। यों तो संसार में एक प्राणी दूसरे प्राणी का भक्षण भी कर रहा है, जैसे रक्षा कर रहा है वैसे ही भक्षण भी कर रहा है परन्तु भक्षण प्रणाली को त्याग करके, तू रक्षा की परम्परा को अपनाने वाला बन। यह वर्णन करके वह अपने में मौन हो गई कि मैंने तो यह विचार किया कि प्रत्येक प्राणी की रक्षा होनी चाहिए। यह हमारे पितृ कहलाते हैं।

जब वह शान्त हो गई तो महर्षि प्रव्हाण पुनः उपस्थित हुए और उन्होंने कहा कि कोई और पितृ के सम्बन्ध में विचार देना चाहता हो तो महर्षि वशिष्ठ मुनि महाराज उपस्थित हुए और बोले कि पितृ के सम्बन्ध

में तो ऋषि-मुनियों ने अपना-अपना बहुत वक्तव्य दिया है और यह सब पितृ की कोटि में ही जगत माना गया है परन्तु जब तुमने कहा है तो मैं भी इस सम्बन्ध में अपना वक्तव्य और विचार संक्षिप्त में दूंगा। मेरा तो यह मन्तव्य रहा है कि जितने पंच महाभूत हैं, यह सर्वत्र पितृ कहलाते हैं। जैसे ऋषि-मुनियों ने कहा है कि सूर्य हमारा पितृ कहलाता है। जहां सूर्य पितृ है वहां आपो भी पितृ है, जहां आपो पितृ है वहां अग्नि भी पितृ कहलाता है। यह अग्नि हमारी रक्षा करती है। यही अग्नि भिन्न-भिन्न रूपों में गमन करती रहती है। यही अग्नि शीतल बनाने वाली है, यही अग्नि ऊष्ण बनाती है, अग्नि के भिन्न-भिन्न प्रकार के भेदन माने गये हैं। जब अग्नि में जल मिश्रण हो जाता है, आपम् ब्रह्मेवाचोः जल, अग्नि और वायु की जब पुट लग जाती है तो यह अग्नि शीतल बन जाती है। यही अग्नि जब केवल्य रह जाती है तो यह अग्नि परमाणु बन करके रहती है। जब यह अग्नि किसी समिधा के सम्पर्क में आती है तो यह आज्य-आहुति बन जाती है। यही अग्नि है जो लौकिक अग्नि को जागरूक करती रहती है। वह लौकिक अग्नि काष्ठों में रहती है, पृथ्वी के समन्वय में होते ही अग्नि अपने स्वरूप को अपने में धारण करने लगती है।

वही अग्नि विचित्र बन करके मानव के नेत्रों में समाहित हो जाती है। मानव दृष्टिपात कर रहा है तो उस अग्नि का सूक्ष्म रूप नेत्र बन गया है और उसका विशाल रूप बन करके वही अग्नि बन गई है। वह वैश्वानर अग्नि बन करके रहती है। जब वह मानव के शरीरों में रहती है तो वही अग्नि वाणी बन करके रहती है, मानव वाक्यों की रचना करता रहता है। अग्नि में जल की धाराओं की पुट लग जाती है और वायु का वेग उसमें मिश्रण हो जाता है तो वाक् की रचना हो जाती है। रचना होते ही वाक् अग्नि बन गई है, वह वाणी अग्नि बन करके रहती है। वह अग्नि साधारण रूप में वैश्वानर नाम की कोटि में रहती है तो मानव उसके मधुर वाक्यों

को ग्रहण करता रहता है, उसको अपने में धारण करता रहता है। उसी वाणी में घृणा की पुट लग जाती है तो वही वाणी तीक्ष्ण बन जाती है। वह तीक्ष्ण बन करके जब राष्ट्रों को घृणात्मक बना देती है तो राष्ट्र भयंकर अग्नि का कांड बन जाता है। गृह में घृणात्मक अग्नि के साथ शस्त्रों की पुट लगा देता है तो गृह अग्नि का कांड बन जाते हैं। यदि कोई वृद्ध है, वृद्ध के प्रति एक बाल्य कटु शब्द कह रहा है तो वह भयंकर अग्नि बन करके रहता है। तो अग्नि का कितना विशाल-स्वरूप माना गया है। विचार विनिमय क्या कि यह अग्नि काष्ठों में रहने वाली है। जहां एक काष्ठ का दूसरे काष्ठ से मिलान हुआ, अग्नि अपने स्वरूप को धारण कर लेती है। वास्तव में वायु का वेग, वायु का पुट लगते ही अग्नि अपने स्वरूप में प्रवेश हो जाती है। जल की धाराओं का मिलान होते ही पिंड की धाराओं में रक्त हो जाती है।

मेरे प्यारे! प्रभु का कितना विशाल यह विज्ञान है। वेद का ऋषि तो बहुत कुछ कहता है। वेद यही तो कहता है कि ज्ञान को अपने में श्रवण करो। वेद का ऋषि क्या कह रहा है, आचार्य ने अपनी कितनी घोषणायें की हैं? इस वाक् की अग्नि कितने विशाल रूपों वाली है। एक पांडित्य वेदों का अध्ययन कर रहा है, अध्ययन करता हुआ वह उद्गीत गा रहा है, जटापाठ गा रहा है तो मनोनीतता में घृणात्मक अग्नि शान्त है, द्वेषाग्नि शान्त है। वह धीमी-धीमी अग्नि रसों को ले करके जब गमन करती है तो वही रस तीक्ष्ण प्राणियों के हृदय को भी स्पर्श करता है तो वह भी बेटा! शीतल बन जाते हैं।

मुझे स्मरण आता रहता है, वशिष्ठ जी कहते हैं कि एक समय जब मैं पूज्यपाद गुरुदेव द्वारा ब्रह्मविद्या को पान कर रहा था तो रेणकेतु मुनि महाराज मेरे ब्रह्म के पितृ कहलाते थे। वह एक समय बोले कि हे ब्रह्मचारी!

चलो आज भ्रमण करते हुए कुछ ऋषि-मुनियों के दर्शन करेंगे। मेरे पूज्यपाद गुरुदेव और हम गमन करते हुए दंडक वनों में पहुंचे। दंडक वनों में एक तुयंगत ऋषि महाराज रहते थे। तुयंगत ऋषि महाराज अपने में साधना करते प्रभु के द्वार पर जाना चाहते थे। मेरे पूज्यपाद गुरुदेव ने कहा कि हे तुंगेत्वर ऋषि महाराज! यह तुम क्या कर रहे हो, यहां क्यों विराजमान हो? उन्होंने कहा कि प्रभु! मैं मोक्ष की पगडंडी को ग्रहण करना चाहता हूं। मैं यह विचार रहा हूं कि कहीं तो वेद का मंत्र अग्नि को ब्रह्माग्नि कहता है, कहीं वायु के वेग को प्राणों की धारा कहता है और प्राण कहीं परमात्मा से सम्बन्धित हो गये तो मैं चिन्तन में लगा हुआ हूं कि कौन सी धारा को अपनाऊं? मेरे पूज्यपाद गुरुदेव बोले कि हे तुयंगत ऋषि महाराज! तुमने कौन सी धारा को अपनाया है? उन्होंने कहा कि मैंने अग्नि की धाराओं को अपनाने का प्रयास किया है। यह अग्नि वाणी के रसों में प्रवेश कर जाती है तो शीतल बन जाती है। इसको शीतल बनाने के लिए अब मैं यागकर्म कर रहा हूं। वह अपने में याग करने लगे, यागाम् भविते, पितृ यागों में लग गये तो वह पितृ यागाम् भविते लोकाम्। उन्होंने कहा कि मैं पितृ याग कर रहा हूं, मैं पितृ की पूजा करना चाहता हूं जिससे मेरा वायुमंडल पवित्र बन करके मेरा अन्तर्हृदय पवित्र हो जाए।

वह अग्नि का चयन करने लगे, वह अग्नि का चयन कैसे करते? अग्नि प्रदीप्त हो रही है, वे उसके समीप विद्यमान हैं। उसको नमस्कार करके कहते हैं कि हे अग्नि! तू प्रकाश का द्योतक है, प्रकाश देने वाली है। हे अग्नि! तू जिस रूप में मुझे दृष्टिपात कर रही है, यह रूप तेरा जब विच्छेद हो जाता है तो तू वाणी के रूप में प्रवेश कर जाती है। जब वाणी का रूप भी तेरा विच्छेद हो जाता है तो तू वायु की प्रतिभा को ले करके, तू प्राण के साथ मेरे अन्तर्हृदय में गति करती है। जब उससे भी ऊर्ध्वा में गति करती है तो मन को सहकारिता बना करके तू प्रभु के मिलन की पगडंडी को

ग्रहण कर लेती है। इस अग्नि के ऊपर वह चयन करने लगे। जब चयन करने लगे तो पूज्यपाद गुरुदेव ने कहा कि हे पुत्र! यह अग्नि का चयन कर रहा है, यह अग्नि को पितृ जान करके ही इसका चयन कर रहा है। चलो, आज हम भी पितृयाग करेंगे, अग्नि का चयन करेंगे।

मेरे प्यारे! हम दोनों भयंकर वनों में, दूरी जा करके पूज्यपाद गुरुदेव के संरक्षण में अग्नि का चयन करने लगे। वह अग्नि जो हमारे अन्तर्हृदय में प्रदीप्त हो रही थी, हम दोनों उसका चयन करने लगे। मेरे पूज्यपाद गुरुदेव कहा करते थे कि यह जो अग्नि का चयन मैं कर रहा हूँ, यही अग्नि का चयन जब वैज्ञानिकों के द्वार पर जाते हैं तो अग्नि तरंगें बन करके वह यंत्रों को निर्माणित करने लगते हैं। यंत्रवादी बन करके वैज्ञानिक ऊंचा बनता है, वह पूजा कर रहा है। आओ, हम भी आज वाणी की पूजा करेंगे क्योंकि वाणी अग्नि बन करके रहती है। उस अग्नि का पूजन करने लगे जो विचित्र अग्नि वाणी के रूप में रहती है। यह विचित्र अग्नि है, जो त्रिगुणात्मक रूपों में रहती है। वही अग्नि है, जो भृकुटी में ध्यानावस्थित हो करके, उसमें वायु की पुट लगी रहती है, वही अग्नि जब ब्रह्मरन्ध्र में योगी प्रवेश करता है तो वहां नाना प्रकार की अनहद स्वर ध्वनियां होती रहती हैं, प्राणों की स्वर ध्वनियां भी अग्नि को ले करके होती हैं। उन्हीं स्वरों को अपने में ग्रहण करता हुआ बुद्धिमान व्याकरण की रचना कर देता है। मानव के मस्तिष्क में मेरे प्यारे प्रभु ने नाड़ियों का जो आपस में तारतम्य लगाया हुआ है, नाड़ियों का जो ब्रीच लगा हुआ है, वहां जब अग्नि का वेग वायु को ले करके जाता है तो भिन्न-भिन्न प्रकार की ध्वनियां होने लगती हैं। वाह्य ध्वनि नहीं आती, वही ध्वनि व्याकरण की उत्पत्ति का मूल बनती है।

पूज्यपाद गुरुदेव ने मुझे कहा कि यदि तुम पितृ की सेवा करना चाहते हो, पितृ की आज्ञा का पालना करना चाहते हो तो तुम अग्नि को

अपना पितृ बना करके और अपनी वाणी में पुट लगा करके, वायु की पुट उसमें लग करके वह मूलाधार से ले करके ब्रह्मरन्ध्र तक जो भी ध्वनि का पिपाद आये उसको ग्रहण करने का नाम, वह अग्नि की पूजा है। वही तो अग्नि पितृ कहलाती है। पितृ के सम्बन्ध में महात्मा वशिष्ठ मुनि महाराज ने कहा कि यह अग्नि हमारा पितृ है। अग्नि के भिन्न-भिन्न प्रकार के स्वरूप हैं। पर्वतों की माला में जब हम जाते हैं तो वहां जल का पिंड बन करके एक शीतल रूप में हमारे समीप आता है। वह पिंड का स्वरूप बिना अग्नि के बन नहीं सकता था परन्तु वायु और अग्नि की पुट जब आपो, जल में प्रवेश हो जाती है, तभी वह पिंड बनता है। जब पिंड की अग्नि समाप्त हो करके, द्वितीय अग्नि की पुट लगती है, वही जल का पिंड समय-समय पर जल के रूप में आ करके नदियों के रूप में आ जाता है। वही जल अन्नाद में प्रदान किया जाता है, वही अन्न उज्ज्वल हो करके मानव के समीप आता है।

वाह रे प्रभु! तू कैसा पितृ है। हे भगवन्! ब्रह्मे वाचो, जब मैं तेरी सृष्टि के ऊपर विचार करता हूं तो निरुत्तर हो जाता हूं। तू कैसा गम्भीर है, तू कैसा मार्ग रचयिता है। हे अग्नि! तू कैसा पितृ है। तू पिंड बनाता है और पिंड बना करके उसको उसी रूप में प्रदान कर देता है और वह रूप बन करके पुनः पिंड बना देता है, सूक्ष्म पिंड बना देता है। वाह रे प्रभु! तू कैसा पिंड बना रहा है, कहीं तो जल का पिंड बना करके वही समय-समय पर नर्तकियों रूप में आता है। वही प्राणवर्धक है। जब वायु उसे वेग देता है और वही जब कृषक के द्वार जाता है, वह अन्न के कणों को एकत्रित करके उनका पिंड बना देता है और वह पिंड ही मानव के जीवन की चरी बन जाती है। यह वाक् ऋषि ने उच्चारण किया। उन्होंने कहा कि मेरे विचार में यह अग्नि अपने में पितृ कहलाती है इसलिए इसकी पूजा करनी चाहिए।

पितृओं की पूजा करना बहुत अनिवार्य है। यह जो संसार के पितर हैं इनकी पूजा करना उनकी आज्ञा का पालन करना है, इनसे कुछ गुणाध्यानम करना है। यदि विस्तृत व्याख्या में पहुंचोगे तो जड़वत् जो देवता हैं, जड़वत् हमारे जो पितृ हैं, यह हमारे जीवन को प्रदान कर रहे हैं, जीवन की आभा उन्हीं से प्राप्त होती है। मेरे पुत्रो! मुझे कुछ ऐसा स्मरण है कि वशिष्ठ मुनि ने यह कहा कि भाई! मैं तो अग्नि को अपना पितृ स्वीकार करता हूं, इसके स्वरूप को जानना, वह पितृयाग कहलाता है। अग्नि में हम अशुद्ध वाक् न परिणित करें। यह वाणी भी अग्नि बन करके रहती है, वेग में गति करती है, तरंगें बन करके अन्तरिक्ष में ओतप्रोत हो जाती है। इसी प्रकार यह अग्नि काष्ठों में रहती है, यह अग्नि अपने स्वरूप में प्रवेश हो जाती है। जैसे योगेश्वर अपने नेत्रों से अग्नि को अपने में धारण कर रहा था परन्तु जब विराट रूप को जान लिया तो यही अग्नि का स्वरूप बन गया। तो विचार विनिमय क्या कि हे ऋषियो! तुम अग्नि को अपना पितृ स्वीकार करो, यह हमारा पितृ है। वशिष्ठ मुनि महाराज ने अपने पूज्य गुरुओं के वाक्यों को उद्गीत रूप में ला करके, पुनः उन्होंने कहा कि सम्भवा लोकाम्, अग्नि हमारा पितृ है, यही अग्नि चेतन्य पितृओं के रूप में प्रवेश करके, वेग वाली बन करके अपने में धारयामि बनी रहती है।

ऋषि प्रव्हाण ने कहा कि पितृ याग के सम्बन्ध में और कोई अपनी चर्चा करना चाहता हो तो वह चर्चा दे सकता है। इतने में महात्मा जमदग्नि उपस्थित हुए। महात्मा जमदग्नि अपने में बड़े विचित्र महाक्रोधी थे, बड़े ऋषि भी थे, मुनि भी थे। वह प्रभु की सर्वत्रता को समेट करके अपने में लीन रहते थे। ऋषि-मुनियों ने हर्ष ध्वनि की और कहा कि प्रभु! आप तो अनुभव के वाक् प्रकट कराते रहते हैं, आप हमें कोई ऐसा वचन दे जाइये जो इस ब्रह्मवेत्ताओं की सभा में शिरोमणि हो। जमदग्नि ने कहा कि भाई! जो महर्षि वशिष्ठ मुनि महाराज ने अभी-अभी अपने विचार उद्धृत किये

हैं, उन विचारों के आगे पितृ याग के सम्बन्ध में कोई वाक् उच्चारण करने योग्य नहीं रहा है। अब मैं क्या कर सकता हूँ क्योंकि वह ब्रह्मवेत्ता हैं। उन्होंने कहां से कहां इस अग्नि का मिलान किया, यह उनका बड़ा विचित्र मंथन किया विचार है। यह अकाट्य में रहता है, इसमें विज्ञान भी है, इसमें ज्ञान भी है, इसमें यौगिकता भी है। यौगिकता, ज्ञान और विज्ञान जहां होगा, वहीं पितृ की विवेचना होगी तो अब मैं क्या उच्चारण कर सकता हूँ।

महर्षि प्रव्हाण ने कहा कि प्रभु! जो आपके विचाराधीन हो, उन वाक्यों को उच्चारण कीजिये। महात्मा जमदग्नि ने कहा कि मेरे विचार में तो जैसे अग्नि को इन्होंने पितृ कहा है, मैं वायु को पितृ कहता हूँ। देखो, वायु वेग में गति कर रहा है, यदि वायु नहीं होगी तो यह संसार के चेतन्य पिता और ऋषि-मुनि जो पितृ बने हुए हैं, वह भी और यह अग्नि भी जितनी पितृवादी है, यह सब शान्त हो जायेगी। यदि एक पितृ यह हमारा वायु नहीं होगा तो सब यह पितृ जड़वत् हो जायेंगे। तुमने जान लिया होगा कि यह सब जड़वत् बन करके हमें क्या दे सकते हैं? इसीलिए हमें विचारना है कि वायु को अपना पितृ बनाना है। वायु को पितृ बना करके जानना कि वायु कैसे हमारा पितृ है, क्योंकि वायु के इस ब्रह्मांड में दस भाग बने रहते हैं और देखो, इस पिंड में भी दस भाग बने रहते हैं।

महात्मा जमदग्नि ने कहा कि एक समय मैं भ्रमण करता हुआ, महात्मा कश्यप के द्वार पहुंचा तो मैंने कहा कि भगवन्! मैं जानना चाहता हूँ कि यह जो हमारा शरीर है इसमें वायु के कितने भाग हैं, उन्होंने साधारण रूप से कहा कि दस भाग हैं। दस भागों की विवेचना करने लगे तो कश्यप मुनि ने कहा कि भगवन्! हम तो जानते हैं नहीं, चलो हम गति करते मार्कण्डेय मुनि महाराज जिस आसन पर रहते हैं, उनके द्वार चलते हैं क्योंकि वह आध्यात्मिक और भौतिक विज्ञान दोनों में गति करते हैं। मुनि के द्वार पर

पहुंचे तो महात्मा मार्कण्डेय से कहा कि प्रभु! वायु की ब्रह्मांड और पिंड में कितनी गति है? उस समय मार्कण्डेय मुनि ने कहा कि मेरे विचार में तो दस गति हैं। प्राण की पांच गति ही उन्होंने जानी। आगे की वायु की पांचों गति नहीं जान सके, उनके ऊपर उनका मंथन चल रहा था। महात्मा मार्कण्डेय जी बोले कि मैं पांचों तक पहुंच गया हूं और पांच प्रकार के ऊपर मैं विचार कर रहा हूं, उसका विस्तृत रूप नहीं जानता। महात्मा जमदग्नि ने कहा तो प्रभु! क्या हम अधूरेपन में रहेंगे। उन्होंने कहा नहीं, चलो गति करते हैं।

वह भ्रमण करते महाराज शिव के द्वार पर पहुंचे। महाराजा शिव से कहा कि महाराज! पिंड और ब्रह्मांड में वायु की कितनी गतियां हैं तो शिव ने कहा कि दस गति हैं और यह गतियां अपने-अपने में समाहित हो करके गति करती रहती हैं। यह प्राण बन करके आदान-प्रदान करता रहता है और जब यह उदरब्रह्मे वाचन, अपान बनता है तो जितना भी क्रियाकलाप ब्रह्मांड में है वह सब अपान का हो रहा है। माता के गर्भस्थल में शिशु को पहुंचाना, यह भी अपान का क्रियाकलाप है और पृथ्वी के गर्भ से जल को ऊर्ध्वा में पहुंचाना, यह भी अपान का क्रियाकलाप है। जल को एक स्थान से पान करना और दूसरे स्थान में त्याग देना, यह भी अपान का क्रियाकलाप है। संसार में इसी प्रकार जो भी आदान-प्रदान हो रहा है, जो भी प्रोक्षण ऊर्ध्वा में गति करने का, ध्रुवा में जाने का यह सब अपान की प्रतिक्रिया है, अपान अपने में अपानत्व बन करके रहता है। प्राण तो वायु मंडल में से, लोक लोकान्तरों में से जो उनमें से तरंगें बह रही हैं, उनका जो परमाणुवाद आ रहा है, उसको यह प्राण अपने में लाता है और अशुद्ध परमाणुओं को वायुमंडल में त्याग देता है। और प्राण का व्रत बन करके जो अपान के समीप पहुंच गया है, यह उसमें रक्त हो करके, यह अपान कहीं विद्युत के रसनाहम्, कहीं देखो, शिशु के रूप में, माता के रूप में

प्रवेश कर देता है, पितृओं के रूप में प्रवेश कर देता है। कहीं जल को पान करता है तो उसे त्यागता रहता है; कृषक जब अन्न को उत्पन्न करता है तो जल का प्रोक्षण पृथ्वी से लेता है; पृथ्वी के गर्भ से उस जल को ऊर्ध्वा गति बनाने का कार्य भी अपान का कहलाता है। संक्षिप्तता में यह है कि जितना भी दूरभाषी करने वाला परमाणुवाद को करता है या धातु पिपाद बना करके ऊर्ध्वा गति बनाता है वह सब अपान की प्रतिक्रिया कहलाती हैं। जब ऋषि इस वाक् को स्मरण करने लगे तो पहले ही वाक् में ब्रह्मांड की कृतिका उनके समीप आने लगी। तृतीय प्राण उन्होंने समान को कहा कि यह जो समान प्राण है, यह अपान के कर्णों को ले करके, प्राण के कर्णों को ले करके, रसों का जो विभाजम् ब्रह्मे: वह समान करता रहता है। अपने में पहुंचाता रहता है, चाहे वह पिंड हो, चाहे वह ब्रह्मांड हो, चाहे वह सृष्टिवाद कितना ही ऊर्ध्वा गति में गति करने वाला हो, अपने में रत्त रहता है।

मेरे प्यारे देखो! विचार क्या कि ब्रह्मम् ब्रह्मा लोकाम् वाचन्नम् ब्रहे, उन्होंने पांचों प्राण की विवेचना की। तो व्यान संरक्षण करता है और समान में सामान्यता प्रदान कर देता है, सबको उनका भाग प्रदान करके चाहे वह वायुमंडल में परमाणुवाद हो, चाहे इस मानव शरीर में रसवाद हो, चाहे यह जल जैसे समुद्रों में गति कर रहा है, जैसे पृथ्वी के गर्भ में गति कर रहा है, इसका जो विभाजनवाद है, वह सर्वत्र समान का रहता है। समानम् ब्रह्मे: लोकाम् ब्रहे, प्राण-अपान-समान-व्यान-उदान, यह पांच प्राण कहलाते हैं। अब तुम विराजो और विश्राम करो। मैं प्रातःकालीन जब याग करता हूं तो उसके पश्चात् मैं प्राणों की विवेचना ब्रह्मांड से मापता रहता हूं क्योंकि वेद के मंत्र आते रहते हैं। उन्होंने कहा कि यह चर्चाएं मैं कल प्रकट करूंगा।

आज का हमारा वाक् यह कह रहा है कि महात्मा जमदग्नि कहते हैं कि यह जो वायु है यह हमारा पितृ है। यदि यह वायु नहीं रहेगा तो यह चेतन्य पितृ, जड़पितृ, यह सब शून्यवत् बन जायेगा इसलिए वायु हमारा पितृ है। **वायु को शोधन करना, वायु को पवित्र बना यह हमारा कर्त्तव्य है।** मुझे तो ऐसा काल है, मैं इन वाक्यों में क्या जा सकता हूँ। प्रातःकालीन प्रत्येक गृह में वेद मंत्रों के द्वारा जब याग होने लगता है तो राजा भी अपने राष्ट्र से वंचित हो जाता है। प्रत्येक राजा के राष्ट्र में सुगन्धि भरण हो जाती है, परमाणुवाद पवित्र हो जाता है तो इसीलिए वायु का शोधन करना है। वायु अपने में पितृ है, यह महान पितृ है। महात्मा जमदग्नि बड़े वन में भ्रमण करते रहते थे। वह यौगिक थे और यौगिक वाक्यों में प्राण का एक दूसरे में मिलान करना जानते थे।

बेटा! आज के वाक् उच्चारण करने का अभिप्राय यह है कि जितने पितृ हैं यह एक दूसरे में गुथे हुए हैं, एक दूसरे में अभ्यस्त हैं, इन पितृों की उपासना करना हमारा कर्त्तव्य है। यह तो पितृों की व्याख्या है बेटा! हम जब पितृों की व्याख्या पूज्यपाद गुरुदेव के चरणों में विद्यमान हो करके करते थे तो विज्ञान के यंत्रों का निर्माण भी कर लेते थे और पितृों की व्याख्या करते-करते बड़े मस्तिष्कों की आभा में, गम्भीर मुद्राओं में परिणित हो जाते थे। पितृों की व्याख्या करते-करते एक-एक वर्ष हो जाता था, उनको क्रियात्मकता में लाने के लिए वर्षों व्यतीत हो जाते। यह बेटा! आज का वाक् समाप्त, अब वेदों का पठन-पाठन।

अमृतसर

६-८-१९८५

अतिथि

देखो मुनिवरो! आज हम तुम्हारे समक्ष पूर्व की भांति कुछ मनोहर वेद मंत्रों का गुणगान गाते चले जा रहे थे। यह भी तुम्हें प्रतीत हो गया होगा आज हमने पूर्व से जिन वेद मंत्रों का पठन पाठन किया। हमारे यहां परम्परागतों से ही उस मनोहर वेदवाणी का प्रसारण होता रहता है जिस पवित्र वेदवाणी में उस महामना मेरे देव की महिमा का गुणगान गाया जाता है। प्रत्येक वेद मंत्र उसकी महिमा का वर्णन कर रहा है अथवा उसके गुणों का बखान कर रहा है, जिससे हमें प्रतीत होता है कि हम सब उस परमपिता परमात्मा की आनन्दमयी लोरियों का पान कर रहे हैं। संसार का जितना भी प्राणीमात्र है, वह उस चेतना से गुथा हुआ है, उस चेतना में कटिबद्ध रहने वाला है, जो विज्ञानमयी और ज्ञानमयी स्वरूप माना गया है। हम उस परमपिता परमात्मा को भिन्न-भिन्न रूपों से वर्णन करते रहते हैं अथवा उसके गुणों का वर्णन करते रहते हैं अथवा हम उस विज्ञानमयी धारा में रत हो करके उसको अपना पुरोहित स्वीकार करते हैं क्योंकि वह पराविद्या को जानने वाला है, पराविद्या उसका आयतन माना गया है। मानव उस परमपिता परमात्मा की ऊंची-ऊंची उड़ाने प्रायः उड़ता रहता है और भिन्न-भिन्न प्रकार की कल्पनाएं अथवा उसकी आभा में रत होने के लिए तत्पर हो जाता है। वह अपनी आभा में सदैव निहित रहने वाला है, मानो उसके ज्ञान और विज्ञान की प्रायः मानव अपने में कल्पना करता रहता है और यह विचारता रहता है कि मैं परमपिता परमात्मा की अनन्तमयी आभा में सदैव रत रहता रहूं। अन्तरात्मा में, अन्तर्मुखी हो करके जब वह अपने प्रभु का दर्शन करता है तो मानव के जीवन में

एक महानता की ज्योति जागरूक हो जाती है। आओ मेरे पुत्रो! आज का हमारा वेद मंत्र यह कह रहा है कि उस परमपिता परमात्मा को हम अपने में स्वीकार करें।

प्रत्येक वेद मंत्र किसी सूत्र में पिरोया हुआ दृष्टिपात होता है। जिस भी काल में हमारे यहां वेदों का उद्घोष हुआ और वेद मंत्रों के ऊपर अन्वेषण हुआ अथवा चाहे किसी प्रकार का अनुष्ठान क्यों न हो, उस अनुष्ठान के लिए जो वेद मंत्रों का उद्गीत मानव ने गाया, उनका उच्चारण करने के लिए तत्पर हुआ तो प्रत्येक वेद मंत्र बेटा! ओ३म् रूपी सूत्र से पिरोया हुआ है। हमें यह स्वीकार करना है कि हम अपने में उस परमपिता परमात्मा को ओ३म् के नामों से वर्णन करते हैं व प्रत्येक वेद मन्त्र में उसकी ध्वनि आचार्यजनों ने अपने में सिद्ध की है।

जिस भी काल में ऋषि-मुनि अपने में ये विचार विनिमय करते रहते थे कि ओ३म् के उच्चारण करने से वेद का क्या समन्वय रहता है तो उसी काल में ऋषि-मुनियों ने उसका निपटारा किया है और यह कहा कि प्रत्येक वेद मंत्र में उस परमपिता परमात्मा का ज्ञान और विज्ञान है और उसमें ही संसार का ज्ञान और विज्ञान भी निहित रहता है। इसी ओ३म् रूपी सूत्र में संसार का सभी ज्ञान और विज्ञान पिरोया हुआ है अथवा उसी में वह रत रहने वाला है जैसे मानव का शब्द वाक् इन्द्रियों से पिरोया हुआ है। उसकी जो शक्ति है, उसकी जो प्रेरणा है वह उस महान देवत्व आत्मा से कटिबद्ध रहने वाली है। इसी प्रकार संसार का जितना भी ज्ञान और विज्ञान है, चाहे वह यातायात के रूप में हो, चाहे वह सूर्य लोक में जाने वाला विज्ञान हो, चाहे वह चन्द्रमा में जाने वाला विज्ञान हो, विज्ञान के वांग्मय में जब मानव प्रवेश करता है तो वह विज्ञान किसी सूत्र में पिरोया हुआ

है, मानो वही सूत्र चेतना के रूप में है, वह ओ३म् रूपी धागे के रूप में विद्यमान रहता है। मेरे पुत्रो! जब हम अपने प्रभु को अपना सखा स्वीकार करते हैं कि हम एक सूत्र में पिरोए हुए हैं तो उस सूत्र में हम सूत्रित होते चले जाएं।

बेटा! जब मुझे वह काल स्मरण आने लगता है, जिस काल में ऋषि-मुनि अपने में विद्यमान हो करके उस परमपिता परमात्मा को अतिथि के रूप में स्वीकार करते रहे हैं, मानो याज्ञिक पुरुषों ने उस परमपिता परमात्मा को अतिथि के रूप में माना है। गृह आश्रम में जैसे एक बुद्धिमान अतिथि आता है और वह अपने गुणों का वर्णन करता हुआ गृहपति को ऊंचा बनाता रहता है और गृह स्वामी और गृह स्वामिनी अपने में प्रसन्न होते रहते हैं इसी प्रकार वह परमपिता परमात्मा हमारा एक अतिथि के रूप में रहता है। बेटा! हमारे यहां बहुत पुरातन कालों में यागों की कल्पना की है। जब हमारे यहां वैदिक साहित्य वाले वेद के वांग्मय में प्रवेश हुए और उस मंत्र के ऊपर चिंतन करना प्रारम्भ किया तो बेटा! उन्होंने नाना प्रकार के यागों में एक अतिथि याग की बड़ी प्रशंसा की है, मानो वह बड़ा प्रशंसनीय एक विषय माना गया है।

मेरे प्यारे देखो! भिन्न-भिन्न प्रकार के याग हैं जैसे कोई देव याग के रूप में है और ब्रह्मयागी बन करके हम ब्रह्म का चिंतन करते हैं। इसी प्रकार से देखो! संगतिकरण में अभ्युदय होने लगता है तो हमारा एक अतिथि याग होता है। अतिथि का अभिप्राय यह होता है कि कोई भी बुद्धिमान मानव जिसकी कोई भी तिथि निश्चय न हो और वह हमारे गृह में प्रवेश करता है और हमें ऊंचा उपदेश देता है, ऊर्ध्वा में हमें गमन कराता है तो वह हमारा अतिथि कहलाता है। वास्तव में तो वह परमपिता परमात्मा हमारा प्रायः अतिथि माना गया है। देखो! जब माता के गर्भस्थल

से एक बालक का जन्म होता है तो वह भी अतिथि के रूप में माना गया है। वह अपने भावों को तो व्यक्त नहीं कर सकता परन्तु उसके आने से जो प्रसन्नता जनसमूह में उत्पन्न होती है तो वही प्रसन्नता का स्रोत गृह में बुद्धिमान अतिथि के आने पर बहने लगता है।

मेरे पुत्रो! एक समय महर्षि कागभुषंड जी और महर्षि लोमश मुनि दोनों अपने में चर्चा कर रहे थे। एकन्त स्थलि पर विद्यमान हो करके लोमश जी ने कहा कि हे कागभुषंड जी! मैं न्यौदा में प्रातःकालीन अध्ययन कर रहा था तो आज के हमारे वेदों के पठन-पाठन में भी अतिथि शब्दों की विवेचना हो रही थी। कागभुषंड जी ने कहा कि महाराज अतिथि तो एक दूसरे के मिलन को कहा जाता है जैसे परमपिता परमात्मा का भक्त से सृष्टिकाल में मिलान होता है तो वह एक अतिथि के रूप में कल्याणकर्ता कहलाता है। जो कल्याणकारी है, वह हमारे यहां अतिथि के रूप में विद्यमान रहता है। जब ऋषि कागभुषंड जी ने यह कहा तो उन्होंने कहा कि भाई! आज तो हमारी इच्छा है कि आओ चलो, हम किसी के अतिथि बनेंगे। तो उन्होंने कहा कि बहुत प्रियतम। तो बेटा देखो! महर्षि कागभुषंड जी और महर्षि लोमश जी भ्रमण करते हुए, अपने में चिंतन करते हुए वह महर्षि श्वेता श्वेतर मुनि के आश्रम में पहुंचे।

श्वेता श्वेतर मुनि ने दोनों का स्वागत किया और उन्होंने कहा कि हे भगवन्! आज यह मेरा कैसा सौभाग्य जागरूक हो गया है कि तुम्हारे आने की भी कोई सूचना न थी और ब्रह्मवेत्ताओं का आगमन हुआ है। कागभुषंड जी और महर्षि लोमश मुनि महाराज दोनों अपने में मग्न और हर्षध्वनि करने लगे। उन्होंने उनका अतिथि रूप में स्वागत किया, भोज्य कराया और जब वह विराजमान हो गये तो और भी नाना ऋषिवर उनके आश्रम में आ पहुंचे जिसमें महर्षि पनपेतु मुनि महाराज और महर्षि गौतम

मुनि भी विद्यमान थे। ऋषियों की वार्ता प्रकट होने लगी तो मुनि और कागभुषंड जी ने महर्षि गौतम से कहा कि हे प्रभु! यह ईश्वर क्या है, आप ईश्वर के सम्बन्ध में अपनी क्या विवेचना देते हैं? उन्होंने कहा कि परमपिता परमात्मा को सर्वत्र एक चेतना के रूप में हम स्वीकार करते हैं। महर्षि कागभुषंड ने कहा कि यदि हम परमपिता को चेतना के रूप में न स्वीकार करके, मानो एक अतिथि के रूप में स्वीकार करें तो इसमें तुम्हारा क्या मन्तव्य है? तो महर्षि गौतम मुनि बोले के ब्रह्मे कृतम ब्रह्माः, वह परमपिता परमात्मा सर्वज्ञ है, वह अतिथि भी है, मानो वह पुरोहित भी माना गया है। उन्होंने कहा तो प्रभु! हमें पुरोहित की विवेचना कीजिए।

महर्षि गौतम का उपदेश

महर्षि गौतम मुनि ने कहा कि पुरोहित उसे कहा जाता है जो चेतना में बद्ध रहने वाला है और चेतना उसका आयतन माना गया है। जैसे प्राण अपनी गति कर रहा है, वायु के सन्निधान मात्र से ही सर्वज्ञता में गतियां हो रही हैं तो वह जो गति है, वह उस परब्रह्म परमात्मा का एक आयतन माना गया है जिसमें मानव अपने में मानवीयता का प्रायः दर्शन करता रहता है। जब ऋषि ने यह अपनी विवेचनाएं प्रकट कीं तो उन्होंने कहा कि प्रभु! वाक् तो आपका यथार्थ है परन्तु हम भी तो किसी के अतिथि हैं क्योंकि हम प्रभु की आभा में निहित रहने वाले हैं। उन्होंने कहा कि अतिथम् ब्रह्माः कृतम देवाः, अतिथि वह कहलाता है जो पराविद्या का उपदेश देने वाला है। वह परमपिता परमात्मा हमें पराविद्या को प्रदान करने वाला है।

मेरे पुत्रो! यह वार्ता हो ही रही थी कि गौतम ऋषि से यह प्रश्न किया गया कि महाराज! संसार में जितने भी वैदिक अलंकारिक रूपों में मानव गति करता रहता है उसके सम्बन्ध में आपका क्या विचार है? महर्षि गौतम बोले कि संसार के जितने भी अलंकारिक शब्द हैं, उनको अलंकार

के रूप में ही परिणित रहना चाहिए! जब तक वह अलंकारिक रहेंगे तब तक उसका कोई अस्तित्व है और जब वह मिश्रित हो करके साहित्यिक बन जाएंगे तो दोनों का मिश्रण हो करके साहित्य में भ्रष्टता आ जाती है। वह साहित्य उस प्रकार नहीं रह पाता। गौतम ऋषि क्योंकि अपने में गति प्रवाह हैं, उन्होंने कहा प्रभु! आपको गौतम क्यों कहते हैं। महर्षि गौतम मुनि ने कहा यह कोई जानकारी का विषय नहीं है। मेरे पुत्रो! लोमश जी ने कहा कि गौतम इसलिए कहते हैं, यह अपने विचारों को गोपनीय रखकर ही देखो, गोपनीय विषय बनाये रहते हैं। इन्हें गौतम इसलिए कहते हैं कि यह इन्द्रियों को, अपने में संयम में लाने वाले हैं। वह गौ नाम की जो इन्द्रियां हैं उनको यह संयम में बनाते रहते हैं तो यह गौतम कहलाते हैं।

मेरे प्यारे! उन्होंने कहा कि गौतम के और भी भिन्न-भिन्न स्वरूप हैं। देखो! जो चन्द्रमा अपने में प्रकाश दे करके अपने में रत्त हो जाता है मानो, चन्द्रमा के तुल्य महर्षि गौतम मुनि का प्रकाश है। देखो! गौतम ब्रह्माः, गौतम वही कहलाता है जो अपनी गौ नाम की इन्द्रियों को अपने में संयमी बनाता हुआ योग की प्रतिभा में रत्त हो जाता है। देखो! प्रत्येक मानव को ब्रह्मऽहम् ब्रतेः, अपनी इन्द्रियों पर संयम करना चाहिए। जो इन्द्रियों पर संयम करना जानता है वही तो गौतम कहलाता है। वह रात्रि को अपने में धारण करता है इसलिए उन्हें गौतम कहा जाता है। हमारे यहां देवताओं और ऋषि-मुनियों, दोनों की प्रतिभाएं एक ही सूत्र में स्वीकार की गयी हैं। मुनिवरो देखो! महर्षि गौतम मुनि से उत्तर-प्रश्न करते हुए महर्षि कागभुषंड और लोमश मुनि महाराज ने वहां से भ्रमण किया और वह राजा रावण के यहां लंका में जा पहुंचे।

राजा रावण के यहां विश्वविद्यालयों में भिन्न-भिन्न प्रकार की चर्चाएं होती रहती थीं। उनके विश्वविद्यालय में उस समय महर्षि भारद्वाज

मुनि का आगमन होने वाला था। महर्षि कागभुषंड जी और महर्षि लोमश मुनि महाराज दोनों जब राष्ट्रीय आभा में रमण करते उनके विश्वविद्यालय में पहुंचे तो राजा रावण के विधाता कुम्भकरण विज्ञान में पारायण होने से विद्यालय में विज्ञान की शिक्षा प्रदान कर रहे थे। जब उन्होंने ऋषियों का आगमन दृष्टिपात किया तो वे बड़ी हर्षध्वनि करने लगे। उन्होंने ब्रह्मवेत्ताओं को एक आसन प्रदान किया और उन दोनों के विद्यमान होने के पश्चात कहा कि कहिए भगवन्! आप क्या पान करेंगे। उन्होंने कहा कि जो इच्छा, जैसी भी तुम्हारी इच्छा हो। उन्होंने नाना प्रकार के पदार्थों का पान कराया और पान कराने के पश्चात उन्हें आसन प्रदान कर दिया।

मेरे प्यारे देखो! महर्षि भारद्वाज मुनि महाराज अपने ब्रह्मचारियों के सहित अपने वाहनों में विद्यमान हो करके जब विश्वविद्यालय में आये तो राजा रावण इत्यादि ने उनके स्वागतार्थ अपनी स्थलि को त्यागते हुए कहा कि आईए भगवन्! और विराजमान होने के उचित आसन प्रदान करके उन्हें भोजन कराया। भोज कराने के पश्चात विश्वविद्यालय में ब्रह्मचारी एक पंक्ति में विद्यमान हो गये और ऋषि-मुनियों का एक आसन बन गया। महर्षि कागभुषंड, महर्षि लोमश, महर्षि भारद्वाज, ब्रह्मचारी सुकेता और ब्रह्मचारी कबन्धि और ब्रह्मचारी द्रौण इत्यादि सब अपने-अपने आसन पर विद्यमान हो गये। अब बारी-बारी से उनकी एक उपदेश मंजरी प्रारम्भ हुई।

महर्षि कागभुषंड का उपदेश

मेरे प्यारे! सबसे प्रथम महर्षि कागभुषंड जी से यह कहा गया कि महाराज! ब्रह्मचारियों को आशीर्वाद के रूप में आपका कुछ उपदेश हो जाना चाहिए। उन्होंने कहा कि हम तो अतिथि हैं परन्तु जो निमंत्रित आये हैं, उनको आप आज्ञा दीजिए कि वह अपना उपदेश करें। उन्होंने कहा कि नहीं भगवन्! अतिथि तो निमंत्रित से भी महान होते हैं, आप भगवन्! कुछ उपदेश

दीजिए। मेरे पुत्रो! हमें कुछ स्मरण आ रहा है कि महर्षि कागभुषंड जी उपस्थित हुए और उन्होंने ब्रह्म ब्रह्मव्रते वांचक करते हुए सभी को सम्बोधित किया। हे सभा! हे ब्रह्मचारियो! हे विश्वविद्यालयों में गमन करने वाले, नाना प्रकार की ज्ञान और विज्ञान की उड़ाने उड़ने वालो! हे वेद के पठन-पाठन में रत रहने वालो! मैं कोई व्याख्याता नहीं हूँ परन्तु चर्चा यह अवश्य करेंगे कि हम अपने में, अपनेपन में समाहित हो जाएं। जब अपना अपने में समाहित हो जाता है तो उसकी बुद्धि, उसकी ऋतम्भरा, मानो प्रज्ञावी के रूप में परिणित हो जाती है। हे ब्रह्मचारियो! यह तुम्हारा सौभाग्य है कि तुम वेदों का अध्ययन कर रहे हो, विज्ञान में तुम्हारी उड़ान हो रही है और तुम अपने राष्ट्र को ऊंचा बनाना चाहते हो। यदि राष्ट्र को ऊंचा बनाना है तो विश्वविद्यालयों में अनुशासन की प्रवृत्तियाँ हों। जब आचार्यगण ब्रह्मचारियों को महान उपदेश और विश्वविद्यालयों में प्रातःकालीन याग करते हैं तो राष्ट्र पवित्र बनता है।

बेटा! राजा रावण के यहां भी विश्वविद्यालय में ब्रह्मचारी याग में परिणित रहते थे। ऋषि-मुनि अपने में याज्ञिक बने हुए थे। मेरे पुत्रो! उपदेश दे करके उन्होंने कहा कि तुम्हें मेरा तो केवल यही शब्द है कि जब तुम प्रातः और सांयकाल, संधिकाल में अपनी क्रियाकलापों से निवृत्त हो जाओ तो उस काल में भी तुम्हारे विचारों की उड़ाने कर्तव्यवाद के ऊपर निहित रहनी चाहिए। कर्तव्यवाद ही संसार को महानता में ले जाने वाला है। यह संसार अनुशासित रहना चाहिए। जब विश्वविद्यालय में अनुशासन होगा तो राष्ट्र अनुशासित हो जाता है। वह इतना उच्चारण करके शान्त हो गये।

महर्षि लोमश का उपदेश

मेरे पुत्रो! उनके शान्त हो जाने के पश्चात महर्षि लोमश मुनि महाराज उपस्थित हुए और उन्होंने कहा कि हे ब्रह्मचारी जनो! तुम्हें यह प्रतीत है कि यह ब्रह्म विचारकों की यज्ञशाला है। इसमें उस ब्रह्म का चिंतन करने

वाले और मानवीय दर्शनों में परिणित रहने वाले सब उपस्थित हैं। मेरा तो इस सम्बन्ध में एक ही मन्तव्य है कि प्रत्येक मानव को अपने विचारों को याज्ञिक रूप में ले जाना चाहिए। जैसे यज्ञशाला में यजमान अपने साकल्य को, होता जनों के साथ में निस्वार्थ हो करके, अग्नि के मुख में प्रदान कर देता है और अग्नि उसे विभक्त कर देती है, अग्नि देवताओं का दूत कहलाता है, इसी प्रकार हे ब्रह्मचारीजनो! हे विश्वविद्यालयों में पठन पाठन करने वालो! तुम्हारा हृदय इतना पवित्र होना चाहिए कि तुम्हारे शब्द वायुमंडल में प्रवेश हो जाएं क्योंकि शब्दों से गृह पवित्र बनते हैं, शब्दों से मानवीयता ऊंची बनती है और शब्दों से ही राष्ट्र और समाज ऊंचे बना करते हैं। अब तुम अपने शब्दों में ऐसे गम्भीर बनो कि जैसे सूर्य की नाना प्रकार की किरणें, नाना प्रकार की कान्तियां, एक दूसरे में सुगठित हो करके सबको ऊर्जा प्रदान करने वाली हैं। वह ऊर्जा सत्ता है, वही तो तुम्हारे लिए महानता का दर्शन करा रही है। सूर्य की नाना प्रकार की रश्मियां प्रातःकाल होते ही मानव को प्रकाश में पहुंचाने का प्रयास करती हैं, प्राणीमात्र को ऊर्जा दे करके उसे परिपक्व बनाती रहती हैं। इसी प्रकार मानव के जीवन की जो ऊर्जाएं हैं, मानव के जीवन की जो विचार रूपी रश्मियां हैं, वह गृह को पवित्र बना देती हैं और विद्यालयों में ब्रह्मचारियों के हृदय की जो विचित्र रश्मियां हैं, वह देखो! विद्यालय को ऊंचा बना देती हैं।

सूर्य की नाना प्रकार की जो किरणें विज्ञान का मूलक बन करके रहती हैं और वह जब मानव के हृदय में समाहित हो जाती हैं तो मानव का हृदय भी प्रफुल्लित हो जाता है, पवित्रता का दर्शन करने लगता है। उन्होंने कहा कि सूर्य की नाना प्रकार की रश्मियां चन्द्रमा को ऊर्जा दे करके, चन्द्रमा को अमृतवाला बना देती हैं और वही ऊर्जा पृथ्वी के गर्भ में प्रवेश हो करके नाना प्रकार के खाद्य और खनिज पदार्थों का मूलक बन जाती

है। वही सूर्य की नाना रश्मियां तारामंडलों को अपने में धारण करने लगती हैं। वही सूर्य की नाना प्रकार की जो रश्मियां हैं वह बेटा! कहीं अमृत बन करके, कहीं अग्नि के रूप में परिणित हो करके मानव को अपने पाप-पुण्य कर्मों का फल भी उसी से प्राप्त होने लगता है। मेरे पुत्रो! मैं यह विचार इसलिए दे रहा हूं कि आज वेद का मंत्र इस प्रकार का आ रहा है। वेद का मंत्र कहता है कि प्रत्येक मानव को अपने में रत्न रहना चाहिए। देखो! यह वाक् उच्चारण करके महर्षि लोमश मुनि ने कहा कि हम जैसे सखा उस परमपिता परमात्मा को पान करना चाहते हैं तो प्रत्येक इन्द्रियों की रश्मियों को एक सूत्र में पिरो करके, संयम में ला करके देखो, यौगिकता को प्राप्त हो जाते हैं। यह वाक् प्रकट करके लोमश मुनि अपनी स्थिति पर विद्यमान हो गये और उन्होंने ब्रह्मचारी कबन्धि को सम्बोधित करते हुए कहा कि कबन्धि! तुम्हारा कोई विचार होना चाहिए।

ब्रह्मचारी कबन्धि का उपदेश

मेरे प्यारे देखो! ब्रह्मचारी कबन्धि जी उपस्थित हुए और कहा कि मैं इन ऋषि-मुनियों के समीप क्या अपना उपदेश, क्या मैं अपना विचार व्यक्त कर सकता हूं परन्तु मैंने गुरुओं के चरणों में ओतप्रोत हो करके जो पान किया है, मैं उसे उद्गीत रूप में गाने के लिए तत्पर हूं। देखो! उन्होंने कहा कि मेरे विचार में तो जो सब ब्रह्मवेत्तागण वैज्ञानिकजन विश्वविद्यालय के दीक्षान्त रूप में विद्यमान हैं, उन सबका एक ही मन्तव्य है कि मानव को प्रकाश में रत्न रहना चाहिए। महर्षि कागभुषंड जी ने अपना उपदेश दिया, लोमश जी ने अपना उपदेश दिया और हमारा भी यही मन्तव्य है, उपदेश है कि मानव को अन्धकार को त्याग कर प्रकाश में जाना है। हे ब्रह्मचारियो! तुमने गारपथ्य नाम की अग्नि का अपने जीवन में सदैव पूजन किया है। गारपथ्य नाम की अग्नि वह है जो हमारे शरीरों में ऊर्जा बन करके

रहती है, वह ब्रह्मचरिष्यामी बन करके रहती है। उसी ऊर्जा को तुम्हें स्थिर करना है और उसी ऊर्जा के परमाणुरूप को तुम्हें जानना है। उस परमाणुरूप को जान करके तुम्हें विज्ञान के वांग्मय में प्रवेश करना है। जब हम आचार्यकुल में प्रवेश हुए तो महर्षि भारद्वाज मुनि महाराज ने हमें यह उपदेश कराया था कि रात्रि हो, दिवस हो, सांयकाल हो, कोई भी काल हो परन्तु जो तुम्हें शंका उत्पन्न हो उसे मेरे से प्रकट करो।

जब हम आचार्य के समीप पहुंचे तो देखो, यज्ञम भविताम् देवम् चित्रम वृत्तम ब्रह्माः, यह वेद मंत्र की आख्यिका हमें स्मरण आने लगी। यह जो यज्ञों में चित्रों का वर्णन आता है इसका क्या अभिप्राय है? आचार्यजन हमें उपदेश देते थे कि चित्र का अभिप्राय यह है कि अपना मानवीय दर्शन करना है, चित्रण करना है और चित्रण को हमें बाह्य जगत में दृष्टिपात करना है। जब मानव का चित्रण पवित्र बन जाता है तो वह अपने में शान्त मुद्रित हो करके दर्शन करने लगता है। सूर्य की किरणों के साथ विचारों का यंत्र बन करके अन्तरिक्ष में गमन करना, विचारों का यंत्र बन करके वायुमंडल में भ्रमण करना यह सर्वत्र कबन्धि ने वर्णन किया। ब्रह्मचारी कबन्धि ने कहा कि विज्ञान के वांग्मय में जब हम प्रवेश करते हैं तो एक-एक परमाणु एक दूसरे को सहयोग दे रहा है, एक दूसरे में पिरोया हुआ है। इसी प्रकार मानव समाज एक दूसरे से पिरोया हुआ है। ऐसे ही परमपिता परमात्मा का जो अनूठा यह जगत है अथवा वेद के वांग्मय में जितना भी ज्ञान और विज्ञान है, यह एक दूसरे से पिरोया हुआ है। इसी प्रकार वह चित्र और चित्रण हो करके, देखो वह अन्तरिक्ष में प्रवेश करके परमाणुओं का आदान प्रदान कराता रहता है।

ब्रह्मचारी कबन्धि ने कहा कि हम अपने विद्यालयों में विद्यमान हैं, हे ब्रह्मचारियो! तुम ब्रह्मवर्चोसि बन करके अपने विद्यालय को सजातीय

बनाओ। मेरे पुत्रो! उन्होंने जब यह वाक् प्रकट किया तो एक आनन्दवत आने लगा। ब्रह्मचारी कबन्धि ने कहा कि हम अपनी उड़ाने उड़ते हुए नाना लोक-लोकान्तरों में गमन करने वाले बने, राष्ट्रीयता में एक दूसरे को ऊंचा बनाएं। एक दूसरे राष्ट्र को ऊंचा बना करके, चरित्र और मानवीयता को ला करके हमें अपने में ऊंचा बनना है। बेटा! उन्होंने यह वाक् प्रकट किया कि हम अपने में अपने को दर्शन करते रहें और परमपिता परमात्मा का यह अनूठा जगत हमारे समीप अपने में अपनी कृतिका को प्राप्त होना चाहिए।

मेरे पुत्रो! विचार विनिमय क्या कि अतिथि वह कहलाता है जो पराविद्या का उपदेश देने वाला हो, जो आन्तरिक चर्चाओं में संलग्न रहने वाला हो। यह प्राण सखा है, गति देने वाला है और प्राणत्व सूर्य की किरणों में कटिबद्ध रहता है। इसी प्रकार मानव के शरीरों में जो ऊर्जा गति करती रहती है, वह एक दूसरी इन्द्रिय को पवित्र बनाती रहती है, एक को सत्ताधारी बना करके उसका उद्गीत प्रारम्भ हो जाता है। मेरे प्यारे! आज मैं विशेष चर्चा तुम्हें प्रकट कराने नहीं आया हूँ। विचार केवल यह कि हम परमपिता परमात्मा कि आराधना करते हुए, देव की महिमा का गुणगान गाते हुए इस संसार सागर से पार हो जाएं क्योंकि प्रत्येक मानव इस सागर से पार होना चाहता है। यह जो मान-अपमान वाला जगत है, मान-अपमान वाला जो यह ब्रह्मांड है, इससे प्रत्येक मानव पार होना चाहता है। वेद का मंत्र यह कहता है कि प्रत्येक मानव को इससे पार होना है तो नाना प्रकार के अनुष्ठान प्रायः मानव के मस्तिष्कों में होने चाहिए, अनुष्ठान से मानव को अपने में अपनेपन को प्राप्त होना चाहिए। देखो! यह वाक् उच्चारण करते हुए महर्षि लोमश और कागभुषंड, दोनों ने वहीं विश्राम किया।

आज का वाक् हमारा क्या कह रहा है कि हमें अपने में अनुशासित बन करके, परमात्मा के अनूठे जगत को जान करके इस सागर से पार होना

है। प्रत्येक वेद मंत्र किसी सूत्र में पिरोया हुआ है और वह सूत्र क्या है? वह ओ३म् रूपी सूत्र है जिसमें संसार का ज्ञान और विज्ञान समाहित रहता है। आओ मेरे पुत्रो! कल मुझे समय मिलेगा तो जो रावण का राष्ट्र के सम्बन्ध में मन्तव्य रहा है, भारद्वाज मुनि का जो विज्ञान और विद्यालय से समन्वय रहा है, यह चर्चाएं हम कल प्रकट करेंगे। आज का वाक् समाप्त, अब वेदों का पठन-पाठन होगा।

सरोजनी नगर, नई दिल्ली

५-१०-१९८६

अतिथि यज्ञ

देखो मुनिवरो! आज हम तुम्हारे समक्ष पूर्व की भाँति कुछ मनोहर वेद मंत्रों का गुणगान गाते चले जा रहे थे। यह भी तुम्हें प्रतीत हो गया होगा आज हमने पूर्व से जिन वेद मंत्रों का पठन पाठन किया। हमारे यहां परम्परागतों से ही उस मनोहर वेदवाणी का प्रसारण होता रहता है जिस पवित्र वेदवाणी में उस महामना, उस परमपिता परमात्मा का हम सदैव गुणगान गाते रहते हैं। कहीं उस परमपिता परमात्मा को अतिथि के रूप में स्वीकार किया, कहीं उस परमपिता परमात्मा को अग्नि के रूप में आचार्यों ने दृष्टिपात किया और वह अग्निमयी स्वरूप माना गया है, वह अग्नि ही उसका आयतन है। किन्हीं आचार्यों ने उस परमपिता परमात्मा को अतिथि के रूप में स्वीकार किया है।

जब मानव के पुण्यों को उदय होता है तो उस समय बुद्धिमान अपनी प्रतिभा का प्रायः वर्णन करने लगता है और ज्ञान और विज्ञान की चर्चाएं वह अपने में दृष्टिपात करने लगता है। परमपिता परमात्मा को अतिथि के रूप में क्यों स्वीकार किया जाता है? बेटा! यहां नाना प्रकार के प्रश्नों की झड़ियां लग जाती हैं। परन्तु आचार्यों ने और वेद मंत्रों ने इसका उत्तर देते हुए कहा है कि जिसमें कोई विचार ध्वनि भी नहीं है और वह विचार एक आभा में परिणित हो जाना, ज्ञान और विज्ञान की चर्चाएं और आभा को अपने में धारण करना, वह तो परमपिता परमात्मा की एक अनुपम प्रेरणा है। वह प्रेरणा का जो स्रोत है, वह जो मेरा प्रेरक है, प्रेरणा देने वाला है, वह हमारे अतिथि के रूप में परिणित किया गया है।

हमारा वेद का मंत्र भिन्न-भिन्न प्रकार की उड़ाने उड़ता रहता है। जहां परमपिता परमात्मा को अतिथि के रूप में स्वीकार करते हैं, वहां आचार्यजन यह कहते हैं, वेद की आख्यिका यह कहती है कि वह तो पुरोहित है। जो नाना प्रकार की ग्रन्थियां लगी हुई होती हैं, उनका जब स्पष्टीकरण होता है तो मानव के मस्तिष्क में ऊर्जा उत्पन्न हो जाती है और उसी ऊर्जा के साथ मानव संसार में नाना प्रकार के क्रियाकलापों में तत्पर हो जाता है। आन्तरिक जगत और बाह्य जगत, दोनों को वह अपने में सजातीय बना लेता है अथवा दोनों में यह अपने को स्वप्नमयी दृष्टिपात करने लगता है। तो विचार क्या कि वेद के वांग्मय में जब हम प्रवेश करते हैं तो भिन्न-भिन्न प्रकार की धाराएं, भिन्न-भिन्न प्रकार की तरंगें हमारे समीप आनी प्रारम्भ हो जाती हैं, जिन तरंगों को हम अपने में धारण करते हुए धारयामि बन जाते हैं। हमारे यहां आध्यात्मिकवाद और भौतिक विज्ञान, दोनों की विचारधाराएं प्रायः मानवीय मस्तिष्कों में परम्परागतों से ही रही हैं। एक-एक वाक्य को ले करके ऋषि-मुनियों ने ब्रह्मांड की चर्चाएं की हैं और कण-कण में ब्रह्मांड को उन्होंने दृष्टिपात किया है।

बेटा! मुझे वह काल स्मरण आता रहता है जिस समय गाड़ीवान रेवक मुनि महाराज के आश्रम में विभांडक मुनि महाराज का आगमन हुआ और वह अतिथि के रूप में परिणित हुए, अपने में गम्भीर मुद्रा में मुद्रित होते हुए कुछ अणु और परमाणुओं के ऊपर विचार विनिमय कर रहे थे। एक-एक परमाणु में वह ब्रह्मांड का दर्शन कर रहे थे, क्योंकि एक-एक अणु में ही तो ब्रह्मांड दृष्टिपात आने लगता है। विचार विनिमय यह कि ब्रह्मांड एक नहीं है, नाना प्रकार के ब्रह्मांड हैं, जिनकी गणना शून्य बिन्दु पर चली जाती है। महर्षि विभांडक मुनि ने कहा कि प्रभु! मैं आपका अतिथि हूं, मुझे आप निर्णय कराईए कि जिस आभा में आप लगे हुए हैं, संलग्न हैं, मैं उसी विज्ञान के वांग्मय में प्रवेश करना चाहता हूं। महर्षि गाड़ीवान रेवक मुनि महाराज ने कहा कि आओ, विराजो। वह विराजमान हो गए और

समाधिष्ठ होकर प्राण और मन को एकाग्र करते हुए, प्राण को शोधन करते हुए, प्राण को अपान में परिवर्तित करते हुए वह परमाणुवाद का दर्शन करने लगे। जब लघु मस्तिष्क में उसका दर्शन करने लगे तो प्राण की दुकदुकी से जिस परमाणु को विभाजन किया जाता, उसी में ब्रह्मांड दृष्टिपात आने लगा।

मेरे प्यारे! भौतिक विज्ञान, आध्यात्मिक विज्ञान परम्परागतों से ही ऋषि-मुनियों के मस्तिष्कों में नृत करता रहता है। आज के हमारे वेद के पठन-पाठन में अणु में ब्रह्मांड का दर्शन है, परमाणु में ब्रह्मांड का दर्शन होता दृष्टिपात आता है। जब इस आभा में हम परिणित हो जाते हैं तो नाना ऋषियों का कथन है कि याग हमारा अतिथि माना गया है। यह अतिथि है क्योंकि यह हमारे हृदय में एक प्रेरणा का स्रोत बन जाता है। वह प्रेरणा का स्रोत बन करके मानवीयता में परिणित हो जाए तो अतिथि बन करके याग हमारे समीप आ गया है। याग का अभिप्राय तो बड़ा विस्तृत माना गया है। आचार्यों ने जब याग की कल्पना की तो इस ब्रह्मांड को एक प्रकार की उज्ज्वल यज्ञशाला के रूप में दृष्टिपात किया। ऋषि-मुनियों ने योग में समाधिष्ठ हो करके इसका दिग्दर्शन किया है और विचारा है कि यह तो सर्वत्र एक याग हो रहा है, जो भी मानव सुक्रियाकलाप कर रहा है, वह याग में परिणित हो रहा है, तत्पर हो रहा है।

बेटा! इसी आभा को ले करके आज मैं तुम्हें उसी क्षेत्र में ले जाना चाहता हूँ जहाँ राजा रावण के विश्वविद्यालयों में नाना रूपों में अतिथि की विवेचना होती रही। उस सभा में कागभुषंड, महर्षि लोमश, ब्रह्मचारी कबन्धि, ब्रह्मचारी सुकेता और महर्षि भारद्वाज एक पंक्ति में विद्यमान हैं। राजा रावण को उस सभा का अध्यक्ष पद प्रदान किया गया। राजा रावण का जब नामोकरण सम्बोधित होने लगा तो उस समय उन्होंने कहा नहीं, हमारे जो पूज्य हैं, वह महर्षि भारद्वाज हैं और भारद्वाज मुनि महाराज इस सभा की अध्यक्षता को प्राप्त करने वाले बनें। तपे हुए महापुरुषों के मध्य में, मैं, एक राष्ट्रवेत्ता

होने के संदर्भ में इसके सभापतित्व को ग्रहण नहीं करूंगा क्योंकि राजा को सभापति नहीं बनाना चाहिए क्योंकि सभापति वह बनता है जिसका अन्तरात्मा पवित्र होता है, जिसकी आत्मा में ब्रह्मज्ञान की पिपासा होती है। सभापति वह बनता है जो ब्रह्म की उड़ान उड़ने वाला होता है। महर्षि कागभुषंड जी और लोमश मुनि ने भी इन वाक्यों की प्रशंसा की और कहा धन्य है राजन्! तुम्हारा यह जो आध्यात्मिक याग होने जा रहा है, यह राष्ट्रीय उत्थान के लिए सफलता को प्राप्त हो रहा है।

उन्होंने जब यह वाक्य प्रकट किया तो राजा रावण अपनी निचली स्थिति पर विद्यमान हो गए। इतने में ही ब्रह्मचारी कबन्धि ने कहा कि हे भगवन्! हमारे जो सहपाठी विज्ञान में पारायण हैं, जिनका सात्विक आचार, सात्विक व्यवहार है, महाराजा कुम्भकरण को इस याग का अधिपति बनाना चाहिए। महाराजा कुम्भकरण ने कहा कि नहीं, मैं और मेरे विधाता तो एक ही सूत्र के मनके हैं। मैं इस वाक्य को स्वीकार नहीं करूंगा क्योंकि मैं सदैव इन महापुरुषों के विद्यालयों में, भयंकर वनों में, हिमालय की कन्दराओं में विराजमान हो करके उनके सहयोग से विज्ञान की नाना प्रकार की धाराओं का अध्ययन करता रहा हूँ। मैं इस पद को कदापि ग्रहण नहीं करूंगा। वह भी निचले स्थान पर विराजमान हो गए तो महर्षि कागभुषंड जी ने कहा कि हे भारद्वाज ब्रह्म! क्योंकि आप ब्रह्मवेत्ता भी हैं, विज्ञानवेत्ता भी हैं, विज्ञान की अनुठी-अनुठी वार्ता को तुम हमारे समीप उधृत करते रहते हो, आओ भगवन्! इस अध्यक्षता को प्राप्त करो। बेटा! उन्होंने सर्वत्र ऋषियों की वार्ता को स्वीकार कर लिया। उन्होंने कहा कि जो पुरोहित होता है, वह अतिथि है और जो अध्यक्षता को प्राप्त होता है, वह भी सभा का अतिथि होता है। अतिथि कहते हैं जो प्रबल हो, जो निष्पक्ष वार्ता प्रकट करने वाला हो, जिसके हृदय में सात्विकता के अनुपम विचार हों। उन्होंने कहा कि इस वाक्य को ले करके अपने विचार व्यक्त करो।

ब्रह्मचारी सुकेता का उपदेश

इतने में ब्रह्मचारी सुकेता उपस्थित हो गए और सुकेता ने कहा कि प्रभु! हम इस विश्वविद्यालय में विराजमान हैं जहां पृथ्वी के ब्रह्मचारी अपने में अध्ययन कर रहे हैं, ज्ञान और विज्ञान में जिसकी प्रायः अनुपम गतियां रही है, आज हम उस सभा में विराजमान हैं। हमारे यहां सबसे प्रथम ब्रह्मचारी को जो दीक्षान्त उपदेश दिया जाता है तो उसमें यही कहा जाता है कि जिस विद्यालय में ब्रह्मचारी अध्ययन करता है उसका यौगिक क्रियाकलाप चाहे आध्यात्मिकवाद में हो, चाहे विज्ञानवाद में हो, चाहे वह गृह में प्रवेश करने वाला हो, चाहे आचार्य कुल में प्रवेश करने वाला हो परन्तु अपनी उस पवित्र पावन भूमि को अपने हृदय से दूरी न करने वाला हो। हम सबसे प्रथम आध्यात्मिकवाद में जन्म लेते हैं, आध्यात्मिकवाद की प्रतिभा में रत्न रहते हैं। आध्यात्मिकवाद किसे कहा जाता है, भौतिक विज्ञान किसे कहा जाता है, यह प्रश्न हमारे विद्यालयों में प्रायः बना रहता है। मेरे प्यारे! मुझे तो कुछ ऐसा स्मरण है, मैंने बहुत पुरातन काल में यह वाक्य प्रकट भी किया कि एक समय कुछ ब्रह्मचारीजन अपने में भ्रमण करते हुए अतिथि के रूप में गाड़ीवान रेवक मुनि के द्वार पहुंचे और वहां से भ्रमण करते हुए महर्षि वैशम्पायन के द्वार जा पहुंचे। वैशम्पायन जी महाराज ऋषि-मुनियों को लेकर भारद्वाज गोत्र में सिद्धान्तकेतु के द्वार पर जा पहुंचे। जब सिद्धान्तकेतु से कहा गया कि महाराज! आध्यात्मिकवाद क्या है तो ऋषि ने कहा कि आध्यात्मिकवाद तो एक अतिथि के रूप में है और भौतिक विज्ञान एक राष्ट्र के रूप में माना गया है। जहां मानव समाज का संगठन होता है, उसमें एक अधिपति का एक-दूसरे की रक्षा के लिए निर्वाचन होता है, उसका नाम तो भौतिकवाद कहलाता है और आध्यात्मिकवाद में मानव अनुसंधान करने लगता है, व्यष्टि में जाने लगता है, समष्टि में प्रवेश होता है तो कण-कण में वह ब्रह्मांड को दृष्टिपात करने लगता है और उसमें वह जो अणु है, वह

जो परमाणु है, वह एक सूत्र में पिरोया हुआ है, एक चेतना में पिरोया हुआ है। उस चेतना के स्वरूप को जानना ही आध्यात्मिकवाद कहलाता है।

ब्रह्मचारी सुकेता ने कहा कि महाराज! ऋषि-मुनि अतिथि के रूप में ज्ञान और विज्ञान की वार्ता को ले करके अपने समीप आते हैं। सिद्धान्तकेतु उद्यालक गोत्रिय कहलाते थे। हमारे यहां उद्यालक गोत्र बड़ा विचित्र गोत्र रहा है। जो भी अतिथि आता था, उसका वह स्वागत करते रहते थे। सिद्धान्तकेतु महाराज विज्ञान के द्वारा यंत्रों में अपने पचासवें महापिता का वह दर्शन करते रहते थे। उन्होंने यह निर्णय दिया कि यज्ञशाला में जो यजमान विद्यमान होता है, वह अग्नि की धाराओं के ऊपर साकल्यों को ले करके, वेद मंत्रों की ध्वनि को ले करके द्यौ-लोक में प्रवेश कर जाता है। द्यौ-लोक में शब्द के साथ में मानव का चित्र और उनका क्रियाकलाप यंत्रों में प्रायः दृष्टिपात होता रहता है। मेरे प्यारे! धर्म की विवेचना करते हुए ब्रह्मचारी सुकेता ने कहा कि मानव के शरीर में जो पांच ज्ञानेन्द्रियां हैं, इनमें धर्म समाहित रहता ही है और यही धर्म का कुन्ज कहलाता है। इससे पृथक् जो भी क्रियाकलाप है, वह धर्म न रह करके रूढ़िवाद की परम्पराओं से परिणित हो जाता है। राष्ट्र का निर्माण अथवा चलन, राष्ट्रीयता से उत्पन्न होता है कि धर्म और मानवीयता की रक्षा होनी चाहिए।

मानव सदैव सु-दृष्टिपान करने वाला हो। हमारे यहां वेद के वांग्मय में ऋषि-मुनि विज्ञान के क्षेत्र में जाते हैं तो वहां पहले ही ब्रह्मा का एक ही शब्द स्वाहा: होता है। उद्गाता जब गीत गाते हैं और मंत्रों का जहां समापन होता है वहां स्वाहा: कहता है। स्वाहा: का अभिप्राय यह है कि सु-दृष्टिपात करना, सुश्रवण करना, उच्चारण करना, सु-प्रीति होना, सुगन्धि होना और शब्दों में शुद्धता होनी चाहिए, विचार सुरस होना चाहिए। जब सु आता है तो वही स्वाहा: बन करके मानव की पांच ज्ञानेन्द्रियों का एक रथ बन करके

द्यौ-लोक में प्रवेश कर जाता है। सु का नाम धर्म है और इसे अपने में धारण करना है। जहां साकल्य का विचार होता है, अग्नि को देवताओं का मुख बनाया जाता है, वहां राष्ट्र में विचारों का भी याग होता है। वहां राष्ट्र में धर्म और मानवीयता को अग्रणीय बनाने के लिए उसमें अपनी एक महान पद्धति बनाता है और विचित्रता में परिणित कर देता है। विचारों का याग होना अनिवार्य है। चिन्तन और मनन के साथ में विचार को लाना, यही तो एक महत्ती का दर्शन करना है, यही तो याग के वांग्मय में प्रवेश करना है, जिससे मानव का हृदय अगम्यता की ज्योति में प्रवेश होता हुआ, ज्ञान और विज्ञान की अनुपम धाराओं में गति करने लगे। मेरा विचार तो केवल इतना ही है कि यह याग अपने में महान बना रहे जिससे राष्ट्र में एक सात्विकता का नृत होता हुआ मानव अपने में महान बना रहे। यह वाक्य उच्चारण करके ब्रह्मचारी सुकेता अपने स्थान पर विद्यमान हो गए।

कुम्भकरण का उपदेश

अब कुम्भकरण जी को सम्बोधित किया कि वह अपने विचार व्यक्त करें। कुम्भकरण जी ने ऋषि-मुनियों के चरणों को स्पर्श करते हुए कहा कि मैं इसलिए उपस्थित हुआ हूं कि मैं ऋषि-मुनियों के चरणों की वन्दना कर सकूं। मैं व्याख्याता नहीं हूं। जो भी कुछ मैंने अपने जीवन काल में अध्ययन किया है, इन्हीं चरणों के आंगन में ओतप्रोत हो करके मैंने उस वाक्य को जाना है जिसका मैं उद्गीत गा सकता हूं। हमारे यहां नाना प्रकार के यंत्र हैं जो लोक-लोकान्तरों में गति करने वाले हैं और हमारे यहां वरुणास्त्र है, ब्रह्मास्त्र है, भिन्न-भिन्न प्रकार के यंत्र हैं। लोक-लोकान्तरों में जाने वाला यातायात भी बनने वाला है और कुछ बन गया है। यहां प्रजा विद्यमान है, यहां राष्ट्रवेत्ता विद्यमान हैं। मेरे विचार में यह है कि हमारा राष्ट्र उस काल में सफल होगा जब एक-दूसरे का ऋणी समाज में नहीं रहेगा। जब तक

ऋणी रहता है, तब तक समाज अपने में राष्ट्र नहीं रहता। इस लिए राजा समाज में प्राणी को एक-दूसरे का ऋणी न रहने दे।

आध्यात्मिक विज्ञान के वांग्मय में जाने वाले ऋषि-मुनियों ने तीन प्रकार के ऋणों का वर्णन किया है। सबसे प्रथम ऋण है ब्रह्म ऋण, उसके पश्चात् देव ऋण है और उसके पश्चात् अतिथि ऋण है। और भी नाना प्रकार के ऋणों से हम ऋणी रहते हैं, उनसे हमें उऋण होना चाहिए। यह उस काल में होता है जब ब्रह्मचारीजन गाथा गाते हुए अपने को उसमें संलग्न कराएं तो यह विश्वविद्यालय पवित्र बन जाते हैं और जब विश्वविद्यालय में ऋषि-मुनियों के तपे हुए विचारों को व्यक्त करने लगते हैं तो राजा का राष्ट्र भी पवित्र बन जाता है। क्योंकि राजा का राष्ट्र गृहों से ऊंचा नहीं बनता, भवनों से ऊंचा नहीं बनता, वह केवल विचारों से ऊंचा बनता है। जब मानव के हृदय में एक दूसरे के प्रति स्नेह के विचार बनते जाते हैं तो एक दूसरा मानव किसी का ऋणी नहीं रहता, वह उऋण हो जाता है। वह राष्ट्रीयता में अपने को महान बनाता रहता है और राष्ट्र भी महान बन जाता है।

महात्मा कुम्भकरण ने एक और वाक्य कहा कि मैं एक समय हिमालय की कन्दराओं में अध्ययन कर रहा था। भारद्वाज मुनि के आश्रम से मैं भ्रमण करके आया था। उन्होंने मुझे वर्णन कराया कि यह जो स्वर्णमयी धातु है, खनिज है, इस खनिज में सुगन्ध को ग्रहण करना है। जितना भी संसार में धातु पिपाद है, सर्वत्रता में एक सुगन्धि की तरंगें होती हैं और घ्राण उस सुगन्ध को अपने में ग्रहण कर लेती है। हमारा इतना गम्भीर अध्ययन होना चाहिए, आचरण होना चाहिए कि जिससे हम अपने में यह जान सकें, अपने में यह विचार सकें कि वास्तव में किस खनिज से सुगन्ध आ रही है, क्योंकि मानव का जीवन पिंड और ब्रह्मांड की कल्पना करता रहता है

तो वह सुगन्ध में परिणित रहता है। उन्होंने कहा कि जब मैं हिमालय की कन्दराओं में अध्ययन कर रहा था तो भिन्न-भिन्न प्रकार की अग्नियों का चयन कर रहा था, जिस अग्नि के द्वारा स्वर्ण की धातु अथवा खनिज का निर्माण होता है। और भी नाना प्रकार की अग्नियां इस पृथ्वी के गर्भ में विद्यमान होती हैं और मैं उस धातु को जान करके नाना प्रकार के लोक-लोकान्तरों का यात्री बना हूँ।

एक समय मैं भ्रमण करता हुआ गुरुदेव की आज्ञा पा करके मंगल लोक में पहुँचा तो मंगल लोक के विज्ञानवेत्ता ने यह कहा कि यह जो तुम लोक-लोकान्तरों में भ्रमण कर रहे हो यह तो यथार्थतम है परन्तु मैं यह जानने के लिए तत्पर रहा हूँ कि तुम्हारा राष्ट्र, जहाँ से तुम्हारा आगमन हुआ है, उसके द्वारा महान सु-चरित्रता होनी चाहिए क्योंकि सु-चरित्रता यात्रा को ही लोक-लोकान्तरों में परिणित करा देती है, सुगन्धि देने लगती है। उन्होंने जब यह वार्ता प्रकट की तो मैं शान्त हो करके पुनः अपने आश्रम में आ पहुँचा और यंत्रों के द्वारा मैंने भ्रमण करना शान्त कर दिया। मैंने अपने को असफल दृष्टिपात किया तो मैं विचारने लगा और जब पूज्यपाद के द्वार पहुँचा तब उन्होंने मुझे निर्णय कराया कि यथार्थ है कि तुम प्रथम अपने राष्ट्र, अपने समाज को महान बनाओ तो उसके पश्चात् तुम्हारा राष्ट्र पवित्र बनेगा। कुम्भकरण जी ने यह वाक्य कह कर कहा कि मैं छः-छः माह तक अणु और परमाणुओं की शिक्षा देता रहता हूँ, अपने विचार व्यक्त करता रहता हूँ, यौगिकता के द्वारा, भौतिकवाद की प्रतिभा के द्वारा मैं उद्गीत गाता रहता हूँ। उद्गीत गाते-गाते ही अन्त में मैं मौन हो जाता हूँ। हे ब्रह्मचारियो! तुम्हें मैं विद्यालयों में शिक्षा देता रहता हूँ, मेरा विचार यह है कि तुम अपने जीवन को महान बना करके, पवित्र बना करके अपने को अतिथि के रूप में स्वीकार करो। क्योंकि संसार में जो भी मानव आता है, वह अतिथि बन करके आता है और अतिथि बन करके अपने लोक को प्राप्त हो जाता है।

प्रभु! मेरा तो इतना विचार है कि अपने राष्ट्र में मानवीयता को ऊंचा बनाएं। यह वाक्य उच्चारण करके महाराज कुम्भकरण अपने में मौन हो गए।

रावण का उपदेश

कुम्भकरण आसन पर विद्यमान हो गए तो भारद्वाज मुनि ने राष्ट्र पिता रावण को जब संकेत किया गया तो वह अपने आसन पर विद्यमान हो गए। क्योंकि ऋषियों का जो मानवीय जीवन होता है वह राष्ट्रवेत्ताओं से ऊर्ध्वा में गति करने वाला होता है अतः उन्होंने अपनी प्रजा को सम्बोधित करते हुए, अपने आचार्यों को सम्बोधित करते हुए, ऋषि-मुनियों के चरणों की वन्दना करते हुए कहा कि मेरे हृदय में यह आकांक्षा बनी रहती है कि मेरा राष्ट्र, ज्ञान और विज्ञान में इतना पारायण होना चाहिए कि लोक-लोकान्तरों के विज्ञानवेत्ता भी उसकी वृत्तियां न पा सकें। आध्यात्मिक विज्ञान इतना महान होना चाहिए कि जिससे प्रत्येक मानव अपनी अन्तरात्मा को जान सके क्योंकि अन्तरात्मा याग के ब्रह्मा के सदृश्य है। जैसे यज्ञशाला में ब्रह्मा अपने पद को ग्रहण करता हुआ वह अपने में अपनेपन की धारा को रत्त हो जाता है क्योंकि याग का स्वामित्व करने वाला है, अहिंसा परमोधर्म की वेदी को, विचारों को अपनाने वाला है। वह जो ब्रह्मा है वह याग का शुद्धिकरण करने वाला है। मेरे विचारों में यह आता रहता है कि राजा भी इसी प्रकार का होना चाहिए क्योंकि वह राजा प्रजा का ब्रह्मा बना हुआ है। उसके द्वारा ब्रह्मज्ञान होना चाहिए, आत्मा में ऊंची उड़ान होनी चाहिए। वह प्रवृत्तियां उनके हृदय में बनी रहें।

रावण ने कहा कि प्रभु! अतिथिजन आएँ और मेरे द्वारा अश्वमेध याग में परिणित हो जाएँ, प्रजा और अश्व दोनों के विचार एक सूत्र में परिणित हो जाएँ। अश्व नाम राजा का है और प्रजा जब मेध बन करके राष्ट्र को उज्ज्वलता में परिणित करा देती है तो एकोकीकरण हो जाता है, राष्ट्र पवित्र

बन जाता है। राजा ब्रह्मवेत्ता होना चाहिए। प्रभु! मैं प्रयास कर रहा हूं, मैं ब्रह्मवेत्ता तो इतना नहीं बना हूं परन्तु यदि आप जनों की कृपा हो जाए तो मैं महान विज्ञानवेत्ता बन करके इस संसार की उद्बुद्धता को अपने में धारण करना चाहता हूं। मेरे राष्ट्र में, मेरी पुत्रियां पवित्र बन करके मुक्ति के मार्ग पर जाने वाली हों। ऐसी विदुषी जो समाज को ऊंचा बनाने वाली हों। प्रभु! मैं तो इतनी ही विशेष कल्पना अपने में करता रहता हूं अथवा विचार विनिमय करता रहता हूं। यह वाक्य प्रकट करके रावण अपनेपन में अपने को दृष्टिपात करने लगे।

विचार विनिमय क्या कि विद्यालयों में ऊंचे-ऊंचे महान योगी और तपस्वियों के वचनमृत का पान ब्रह्मचारी को समय-समय पर होना चाहिए जिससे मानव अमृत को पान करके, अमृतमयी बन करके उज्ज्वलता को प्राप्त हो सकें। हमारा जो विचार चल रहा है, वह यह कि हमारे यहां प्रत्येक मानव अतिथि के रूप में विद्यमान है, ज्ञान और विज्ञान के रूप में विद्यमान है। मानव ब्रह्मांड और पिंड की कल्पना करता रहता है, अपने में शोधन करता रहता है, अपने में मानवीयता का दर्शन करता रहता है, जिससे वह भौतिक विज्ञान को अपने में समेटता हुआ आध्यात्मिकवाद में प्रवेश कर जाए। परम्परागतों से ही मानव अपनी इन्द्रियों का साकल्य बनाता रहा है और आध्यात्मिक यागी अपनी आत्मा में उस साकल्य का याग कर रहा है। उसी में हूत कर ब्रह्मांड का वह दर्शन करता रहता है। इस ब्रह्मांड में जितने मनके एक सूत्र में पिरोए हुए हैं, उनकी माला बना करके वह अपने में धारण करता रहा है। इसलिए प्रत्येक मानव को अपनी मानवीयता में परिणित हो जाना चाहिए। यह जो संसार हमें दृष्टिपात आ रहा है, वह मान में हैं, अपमान में है। कोई विज्ञान में उड़ाने उड़ रहा है, अपने में अपनेपन का दर्शन कर रहा है।

मानव संसार में ज्ञान और विज्ञान, नाना प्रकार के अनुष्ठान करता रहता है, अपने जीवन को क्रियात्मक बनाता रहता है। उसका एक ही मन्तव्य होता है कि जीवन में अन्धकार को मैं नहीं चाहता हूँ, मैं गौतम जैसे चन्द्रमा को चाहता हूँ, मैं रात्रि को नहीं चाहता हूँ जो अन्धकार में ले जाए, सुषुप्ति में ले जाए, मुझे आलस्य और प्रमाद में ले जाए। मैं उस प्रकाश का भिक्षुक बना हुआ हूँ, उस अनुष्ठान में जाना चाहता हूँ जिससे मुझे अनुपम प्रकाश आ जाए। जैसे वेद-रूपी प्रकाश मानव के अन्तःकरण को पवित्र बनाने वाला है, जैसे नेत्रों का प्रकाश सूर्य है, इसी प्रकार हृदय का जो प्रकाश है, अन्तरात्मा का जो प्रकाश है, वह वेद रूपी ज्ञान है। इसलिए वेद रूपी प्रकाश को अपनाते हुए हमें अन्धकार रूपी अहिल्या को त्याग करके, प्रकाश रूपी गौतम को अपना लेना चाहिए। जो अन्धकार को त्यागने वाला हो, प्रकाश में रहने वाला हो, उसे गौतम कहा जाता है। यह आज हम इसलिए उच्चारण कर रहे हैं कि वेद के वांग्मय में सारी चर्चाएं आती रहती हैं। अन्धकार को अन्धकार के रूप में स्वीकार करना, साहित्य को साहित्य के रूप में स्वीकार करना, यह समाज की बड़ी महान उपलब्धि कहलाती है।

आज का विचार यह हमारा क्या कह रहा है कि हम परमपिता परमात्मा की आराधना करते हुए, देव की महिमा का गुणगान गाते हुए अपने में मानवीय दर्शनों के लिए सदैव तत्पर रहें। आज का हमारा वेद का मंत्र यही कहता है कि हम परमपिता परमात्मा की महिमा को जानते हुए इस सागर से पार हो जाएं जैसे भारद्वाज मुनि, अतिथि बन करके सभा को सम्बोधित करते रहे हैं, जैसे विद्यालय में आचार्य ब्रह्मचारियों को सम्बोधित करता है, कहीं विज्ञान के वांग्मय में, कहीं दर्शनों के वांग्मय में, कहीं भौतिकता के वांग्मय में प्रवेश कराता है, कल हम यह चर्चा प्रकट करेंगे। यह है बेटा! आज का वाक्य, अब वेदों का पठन-पाठन।

सरोजनी नगर, नई दिल्ली

६-१०-१९८६

अतिथि का तर्पण

देखो मुनिवरो! आज हम तुम्हारे समक्ष पूर्व की भांति कुछ मनोहर वेद मंत्रों का गुणगान गाते चले जा रहे थे। यह भी तुम्हें प्रतीत हो गया होगा आज हमने पूर्व से जिन वेद मंत्रों का पठन पाठन किया। हमारे यहां परम्परागतों से ही उस मनोहर वेदवाणी का प्रसारण होता रहता है जिस पवित्र वेदवाणी में उस मेरे देव परमपिता परमात्मा की महिमा का गुणगान गाया जाता है क्योंकि वह परमपिता परमात्मा महिमावादी हैं। इस ब्रह्मांड के सर्वत्र मूल में वह विद्यमान है। उस परमपिता परमात्मा का हमारे यहां भिन्न-भिन्न रूपों में निरूपण किया गया है। परमपिता परमात्मा को कहीं अग्नि के रूप में प्रकट किया क्योंकि वह तेजोमयी है और अग्नि उसका आयतन माना गया है, वह उसका गृह है अथवा वह उसका सदन है।

यहां एक ही प्रकार की विवेचनाओं में नाना प्रकार की विवेचनाएं हमारे समीप आती रहती हैं जैसे अग्नि के भिन्न-भिन्न स्वरूपों का वर्णन आता रहता है। इसी प्रकार वह जो चेतना में बद्ध रहने वाला है, वह चेतनामयी स्वरूप माना गया है, जो हमारा निर्माण करने वाला है अथवा नियन्ता है, अनुपम है। हम उस परमपिता परमात्मा की महिमा का सदैव गुणगान गाते रहें क्योंकि प्रत्येक मानव इस संसार में जब आता है तो उस परमपिता परमात्मा की महिमा अथवा उसके गुणों का गुणवादन करने के लिए आता है। यदि प्रत्येक मानव उस परमपिता परमात्मा को अधिकारपूर्वक अपने में ग्रहण करता रहे और अपने को उसमें समाहित होता हुआ दृष्टिपात करता रहे तो मानव

और परमपिता परमात्मा का जो महान जगत है, वह अनुपम बनता चला जाता है। आज के हमारे वेद के पठन पाठन में भिन्न-भिन्न प्रकार की चर्चाएं आती रही हैं। वेद का मंत्र हमें माता के ममतामयी स्वरूप में प्रवेश कराता रहता है परन्तु जब माता अपने कर्तव्य का पालन करती है तो वह कर्तव्यवाद ही उस माता को ममतामयी और महान बना देता है। उस माता के हृदय की जो कृतियां हैं अथवा जो धाराएं हैं, वह महान और पवित्र बन जाती हैं।

आज हम तुम्हें उस आश्रम में ले जाना चाहते हैं जहां ऋषि-मुनि अपने में विभिन्न प्रकार का विचार विनिमय करते रहे हैं और नाना प्रकार के विचारों में अपने को रत कराते रहे हैं। परमपिता परमात्मा को कोई कहीं पुरोहितों के रूप में, जो पराविद्या को प्रदान करने वाला है, वह पुरोहित कहलाता है। जैसे गृह आश्रम में अतिथि का आगमन होता है, गृह-स्वामी और गृह-स्वामिनी उस अतिथि के चरणों की वन्दना करके उसे नाना प्रकार के कन्द-मूल इत्यादि और जल से तृप्त करते हैं तो वह अपने में तर्पण करते रहते हैं तर्पण का अभिप्राय है कि त्यागपूर्वक उसकी आराधना करके वह कहते हैं कि आओ भगवन्! यह हमारा बड़ा सौभाग्य है कि बिना सूचना के आपका हमारे आश्रम में आगमन हुआ है। वह अतिथि अन्न-जल से तृप्त होता हुआ अपना उपदेश देता कहता है कि ब्रह्मणे वाचो सम्भव लोकाम, कि यह लोक-लोकान्तरों वाला जो अनूठा जगत है, यह गृह स्वामी तेरे लिए प्राप्त होना चाहिए, यह तेरी प्रतिभा में सदैव रत रहने वाला हो। जब वह यह कहता है तो गृह-स्वामी अपने में प्रसन्न होता है और वह अतिथि उसे उपदेश देता है।

इसी प्रकार हमारे यहां गृह-स्थलियों में, विद्यालयों में आचार्यों के समीप यह सदैव परम्परागतों का एक सिद्धान्त है कि अतिथिजन आते हैं

और वह अपना उपदेश देकर चले जाते हैं। प्रातःकालीन जब हम उस परमपिता परमात्मा का प्रायः स्मरण करते हैं तो उस समय प्राण को हम अपना अतिथि स्वीकार करते हैं। जो प्राण हमारे में गति कर रहा है, वह दसों रूप वाला प्राण कहलाता है, उसके दस प्रकार के स्वरूप माने गये हैं जिस प्राण के आश्रित इस ब्रह्मांड को मापा जाता है। ब्रह्मांड को मापने वाला कौन है? जो ब्रह्मांड का सूक्ष्मतम तन्तु है और जो गति को अपने में धारण करता रहता है तो विचार विनिमय क्या कि मुनिवरो! वह मनस्तव माना गया है। दस रूपों वाला जो यह प्राण सखा है, हमारा जो अतिथि यह प्राण है यही तो ब्रह्मांड का हमें दर्शन करता है, हमें मौलिकता के सूत्र में ले जाता है। मेरे प्यारे! मुझे वह काल स्मरण आता रहता है जब ऋषि-मुनि अपने में ओतप्रोत हो करके ऊंची-ऊंची उड़ाने और कल्पना करते रहते थे। उसी सन्दर्भ में आज हम जब अपनी कल्पना और अपने विचारों में तत्पर हो जाते हैं तो हमें ऐसा प्रतीत होता है कि हम ऐसे मौलिक जगत में विद्यमान हैं जिसमें ज्ञान और विज्ञान अपनी महानता में खिलवाड़ कर रहा है, महानता में नृत्त कर रहा है।

अब हम विचार विनिमय करते हुए महर्षि भारद्वाज मुनि की चर्चा प्रकट करने वाले हैं। महर्षि भारद्वाज मुनि महाराज का विश्वविद्यालयों में गमन होता रहता था। विज्ञान की धाराओं में वह सदैव रक्त रहते थे। जब सर्वत्रता में सब ऋषियों का उपदेश समाप्त हो गया तो भारद्वाज मुनि से यह निवेदन किया गया कि महाराज आज आप अपना कुछ उपदेश दीजिए जिससे यह ब्रह्मचारीजन अपने ब्रह्मवर्चोसि को ऊंचा बना सकें, ब्रह्मवर्चोसि बन करके अपने जीवन को दुहने वाले हों। जैसे गऊ का स्वामी गऊ को दुहने वाला है, जैसे योगीजन अपनी गौ-रूपी इन्द्रियों को अपने में दुहने लगता है, अपने में धारण करा देता है तो इसी प्रकार आप भगवन्! कोई

उपदेश दीजिए जिससे आपके विचारों और आपके वाक्यों का अमृतपान करते हुए उस आभा में हम सब परिणित हो जायें।

राष्ट्र को ऊंचा बनाने के लिए समाज को ब्रह्मवर्चोसि की आवश्यकता रहती है। महर्षि भारद्वाज मुनि महाराज अपने उपदेशामृत का पान कराने लगे। उन्होंने कहा कि जिस विश्वविद्यालय में हम विद्यमान हैं इसमें राजा रावण इत्यादि सभी ने शिक्षा को ग्रहण किया था। महाराज कुम्भकरण ने भी शिक्षा का अनुपान किया है और महात्मा पुलस्त्य ऋषि महाराज भी इसी विद्यालय में अध्ययन करते रहे हैं। यह हमारा बड़ा सौभाग्य है कि सभी आचार्यों ने ब्रह्मचारियों को यह उपदेश दिया कि अपने प्राणत्व को जानना चाहिए। जो प्राणत्व को जानता है, वह ब्रह्मवर्चोसि का पालन करता है। ब्रह्मचर्य जीवन एक ऐसा जीवन है जिसमें वह एक नहीं, भिन्न-भिन्न प्रकार का अध्ययन करता है। वह कहीं योग में जाता है, कहीं अणु और परमाणुओं में रक्त होने लगता है, कहीं राष्ट्र की उड़ाने उड़ने लगता है और कहीं वह खनिज पदार्थों में प्रवेश कर जाता है। भिन्न-भिन्न प्रकार की उड़ाने उड़ता हुआ वह अपने में यह स्वीकार करने लगता है कि आज मैं अपने को ऊंचा बनाने के लिए तत्पर होने जा रहा हूँ।

प्राणायाम

भारद्वाज मुनि ने कहा कि तुम्हें प्राणायाम करना है। हे ब्रह्मचारीजनो! प्राणायाम करने के भी नाना प्रकार होते हैं। एक प्राणायाम खेंचरी मुद्रा वाला होता है। जो खेंचरी मुद्रा में प्राण को अपना सखा बना लेता है, प्राण को अपना अतिथि बना लेता है, वह महानता के लिए तत्पर हो जाता है। एक प्राणायाम मानव का संकल्पमयी होता है। शान्त मुद्रा में विराजमान हो करके, मन को प्राण सखा के निकट ले जा करके वह जो हमारी नासिका के दोनों

स्वर हैं, उन एक-एक स्वरों पर संकल्प बना करके, दोनों का अवधान करता है, वह दोनों का अवरोध करता रहता है तो वह संकल्पमयी प्राणायाम होता है। जिस समय बारह वर्ष इस प्रकार के संकल्पमयी प्राणायाम करने वाला है। जिस समय बारह वर्ष इस प्रकार के संकल्पमयी प्राणायाम करने वाला अभ्यासी महापुरुष बन जाता है तो अपने अन्तःकरण में जो नाना जन्मों के चित्रों का चित्रण हो रहा है, चित्त के मंडल में जन्म-जन्मान्तरों के संस्कारों को हम दृष्टिपात करते हैं। ऋषिजन! बारह वर्ष के अभ्यास करने से, तन्मय होने से वह संस्कार उसके समीप आने प्रारम्भ हो जाते हैं। वह उसे जानने लगता है, वह अपने चित्त के मंडल में अपनी श्रुतियों को लगा करके उसको साकार रूप बनाता रहता है। इसको हम संकल्पमयी प्राणायाम कहते हैं।

एक प्राणायाम हमारे यहां आकाश गमन के लिए होता है, मानव अन्तरिक्ष में गमन करना चाहता है। जैसे एक वैज्ञानिक अपनी यज्ञशाला में विद्यमान हो करके वह नाना प्रकार के यंत्रों का निर्माण करता है और एक यंत्र ऐसा निर्माणित करता है जो सूर्य की ऊर्जा से गति करता है और उसमें विराजमान हो करके वह वैज्ञानिक सूर्य की परिक्रमा करने लगता है। इसी प्रकार मानव जब प्राण रूपी ऊर्जा को अपने में जानने लगता है, रेचक और कुम्भक में परिणित हो जाता है तो वह गमन करने लगता है। वह अपने हृदय देश में प्रवेश करता हुआ, प्राण के रूपों को जान करके अपने में अभ्यास करता हुआ उस दिव्यता का दर्शन करता है, जिसका वह अपने में अभ्यासी बनने के लिए तत्पर होने जा रहा था। तो विचार क्या कि यह अन्तरिक्ष में गमन करने वाले प्राणायाम कहलाते हैं। प्राण को अपान में, अपान को व्यान में और व्यान को समान में और समान को उदान में जब उनका पंचीकरण करके और एकोकी धारा में वह परिणित हो जाता है और अपने हृदय देश में ध्यानावस्थित हो जाता है तो वह अन्तरिक्ष में गमन करने के लिए तत्पर हो जाता है।

आज मैं प्राण विद्या में तुम्हें ले जाना नहीं चाहता हूँ। तुम्हें स्मरण होगा पुत्रो! जब राम और रावण का संग्राम हुआ, महर्षि भारद्वाज मुनि ने कहा कि जिस समय रेनेकेतु ऋषि के द्वार पर स्वातिवेतु ऋषि पहुंचे तो स्वातिवेतु ऋषि महाराज अपने सर्वत्र प्राण को पगदेश में ले गए और वह किसी से भी पग कृतियां न करने वाले बनें। तो परिणाम यह कि प्राण जहां तुम ले जाना चाहते हो, वहीं प्राण अपने में अपने स्वरूप को धारण कर लेता है। प्राण ऐसा विचित्र कहलाता है कि वह अपने में गमन करता हुआ प्राण के द्वारा ही अन्तरिक्ष से पृथ्वी पर आता है। महात्मा कुक्कुट मुनि महाराज के महापिता एक समय दंडक वनों में कुछ अभ्यास कर रहे थे और वह एकन्त स्थल में विद्यमान हो करके अपने चित्त के मंडल को दृष्टिपात करना चाहते थे। तो प्राण, अपान, व्यान और समान में समावेश हो करके बारह-बारह वर्षों के उन्होंने लगभग तीन अनुष्ठान किए और अनुष्ठानों में यह प्रवृत्तियां हुई कि चित्त के मंडल में जो करोड़ो-करोड़ो जन्मों के संस्कार थे, वह उनके समीप आने प्रारम्भ हो गए। मैं अपने विचारों को बहुत गम्भीरता में नहीं ले जाना चाहता हूँ। यह अनुसंधान और विचार का एक विषय माना गया है।

आज मैं प्राण की चर्चा कर रहा था। यह प्राण अनुपम माना गया है। योगीजन जब समाधिष्ठ हो जाते हैं और प्राण को लघु-मस्तिष्क में ले जाते हैं तो जितना यह ब्रह्मांड हमें दृष्टिपात आ रहा है, इसकी माला बनाना प्रारम्भ कर देता है और इसकी माला को धारण करने लगता है। परम्परागतों से ही हमारे यहां कुछ ऐसा माना गया है कि प्राण और मन दोनों को जब तुम ब्रह्मरन्ध्र से ऊर्ध्वा भाग में अथवा लघु-मस्तिष्क में ले जाते हो, लघु-मस्तिष्क से वाचुमस्तिष्क में ले जाते हो तो यह जो परमात्मा का एक अनूठा जगत है, लोक-लोकान्तरों वाली जो धाराएं हैं अथवा उस माला

को वह अपने में धारण करने लगता है और वह माला के सूत्रों में सूत्रित हो जाता है। विचार विनिमय क्या कि वह जो माला को धारण करने वाला है, वही तो अनुपम चित्त के मंडल को ले करके, मन की धाराओं को ले जा करके ब्रह्मांड का दर्शन करने लगता है।

भारद्वाज मुनि ने कहा कि मैं अपने विद्यालय में विद्यमान हूँ और यही उद्गीत गाना चाहता हूँ कि हे ब्रह्मचारियो! तुम्हारा जो ब्रह्मचर्यव्रत है वह दो ही रूपों में रत्न रहने वाला है। आज यदि तुम अपने राष्ट्र को ऊँचा बनाना चाहते हो, अपनी मानवीयता और विद्यालय को ऊँचा बनाना चाहते हो तो प्रातःकालीन, सांयकालीन प्रभु का स्मरण करते हुए ब्रह्मचरिष्यामि! तुम अपनी आभा को जानने वाले बनो क्योंकि बिना प्रकृति के जाने हुए तुम ब्रह्मचारी नहीं बन सकते और प्रकृति को जब तक अपने में क्रियात्मक नहीं बनाओगे, तब तक ऊँचे नहीं बनोगे। यहां यह कहा गया कि राजा का कर्तव्य है कि वह प्रातःकालीन अपने आसन को त्यागने से पूर्व अपने में प्राणायाम करने वाला हो जिससे प्राण सत्ता, मानव का जो मस्तिष्क है, लघु-मस्तिष्क है, मानव की जो प्रवृत्तियाँ हैं, उनमें एक व्यापकवाद आ जाता है, उनमें सर्व-वृत्तियाँ प्राप्त होने लगती हैं। प्राण ही मानव के मन को शक्तिशाली बनाता है। यह मन बड़ा विचित्र है, कोई भी वस्तु मन को अंकुर रूप में प्राप्त हो जाए, उसे वह साकार रूप में बना देता है और साकार रूप में बना करके वह मनस्तव की प्रवृत्तियाँ बन जाती हैं। तो विचार क्या कि वही प्राण तो सखा है, वही अपनी आभा में ले जाने वाला है, वही तो प्राणतत्त्व कहलाता है। जब प्राण सखा को मानव जानने लगता है तो इस संसार सागर से वह पार हो जाता है।

हमारे यहां नाना इस प्रकार के राजा हुए हैं। भारद्वाज मुनि ने यह वर्णन कराया कि अयोध्या में भगवान राम प्रातःकालीन प्राणायाम करते प्राण

सखा को अपने में अवरोध करते और ब्रह्मचरिष्यामि बनते हुए अपने में अपनेपन का भान करते रहते। इसी प्रकार वह प्रतिक्रिया तुम्हारे यहां प्रायः अपनानी चाहिए जिससे राष्ट्र, समाज और छात्रबल ऊंचा बन जाये। जिस राजा के राष्ट्र में छात्रबल ऊंचा होता है, वैज्ञानिक होता है, ब्रह्मवर्चोसि होता है, कर्त्तव्य पारायण होता है तो उस राजा के राष्ट्र में महानता की प्रतिभा जागरूक हो जाती है। भारद्वाज मुनि ने अपना उपदेश दे करके यह कहा कि तुम प्रातःकालीन प्राणायाम करो, सांयकालीन को भी प्राणायाम करो जिससे तुम्हारा मन प्रकृति के नाना स्वरूपों को तुम्हारे समीप लाता रहे क्योंकि यह मन ही तो संसार के स्वरूपों को लाता है। जब इसके अंग-संग यह प्राण विशुद्ध रूप से अतिथि बन करके इसको प्रेरणा देता रहता है, प्रेरित बनाता रहता है तभी तक यह मन "मन" कहलाता है, यह मनन करने लगता है और जब यह प्रकृति के अवरोधों में परिणित होता है तो यह प्रकृति के स्वरूप की आभा को नष्ट करके मानव की प्रकृति को नष्ट कर देता है और उसका जो ब्रह्मवर्चोसि जीवन है, वह कहीं का कहीं चला जाता है।

जब भारद्वाज मुनि ने यह कहा तो ब्रह्मचारियों ने कहा कि प्रभु! धन्य है। हे प्रभु! हम अपने यहां अपने में अनुसन्धान करते हुए अपने मनस्तत्त्व, प्राणतत्त्व को जानते हुए, विज्ञान के युग में प्रवेश करना चाहते हैं। उन्होंने कहा, बहुत प्रियतम। तुम विज्ञान के युग में भी प्रवेश करो। अपने राष्ट्र को ऊंचा बनाने के लिए छात्रबल बलशाली होना बहुत अनिवार्य है। यह बलिष्ठ होना चाहिए जिससे ब्रह्मचारी और ब्रह्मचारिणियां अपने मानवीयत्व को ऊंचा बना सकें और ब्रह्मज्ञान को प्राप्त करते हुए वह ब्रह्मवादी बन करके इस राष्ट्र को और मानवीय समाज को ऊंचा बना सके, ऐसी प्रवृत्ति राष्ट्र में होनी चाहिए। अभी-अभी रघुवंश में एक सभा, वशिष्ठ मुनि महाराज की अध्यक्षता में हुई है। उन्होंने अपनी सभा में यह निर्णय दिया है कि राजा

के राष्ट्र में पांडित्व होना चाहिए और पांडित्व में वास्तव में विवेक होना चाहिए, वेदों का पठन-पाठन होना चाहिए। वेदों के पठन-पाठन की जो अनुपम प्रतिक्रियाएं हैं, वह विद्यालयों में, गृहों में प्रातः कालीन होनी चाहिए जिससे जितना विवेकी पुरुष होता है, जितना पांडित्व वाला पुरुष होता है उतना ही जनसमूह ऊंचा बनता है, जनसमूह में ज्ञान और विवेक की प्रवृत्ति हुआ करती है।

भारद्वाज मुनि ने कहा कि इसीलिये प्रत्येक राजा को चाहिए कि समय-समय पर बुद्धिमानों की गोष्ठियां हो और राष्ट्र में विवेकी पुरुषों का आगमन होना चाहिए। जितना भी विवेक होता है, उतना ही कर्त्तव्यवाद होता है और जितना भी कर्त्तव्यवाद होता है, उतना ही जनसमूह ऊंचा बनता रहता है। राष्ट्र को चाहिए कि वह अहिंसा परमोधर्मः को अपनाते हुए अपने राष्ट्र और मानवीयत्व को ऊंचा बनाए। महर्षि भारद्वाज मुनि महाराज ने यह चर्चाएं की। उन्होंने कहा कि हमारे यहां नाना प्रकार की प्राण चिकित्सा का वर्णन आता है। मैं प्राण की चर्चा कर रहा था कि ऐसे वैद्यराज होने चाहिए जिनसे प्राण के माध्यम से ही रुग्ण समाप्त हो जाना चाहिये। हमारे यहां विज्ञान इतना महानता पर होना चाहिये जिससे हम लोक-लोकान्तरों की उड़ाने उड़ सकें और लोक-लोकान्तरों में हमारा यातायात होना चाहिए। हे ब्रह्मचारियो! ब्रह्मचर्य के माध्यम से ही प्रायः हम लोक-लोकान्तरों की उड़ाने उड़ सकते हैं।

विचार विनिमय क्या कि हम परमपिता परमात्मा की आराधना करते हुए, अपने में योगेश्वर बनते हुए, यौगिक प्रवृत्तियों को ऊंचा बना करके ही हम संसार को ऊंचा बना सकते हैं। हम विज्ञान का सदुपयोग करने वाले बनें क्योंकि विज्ञान का जब सदुपयोग होता है तो प्राण की रक्ष होती है, प्राण और मन, दोनों का समावेश हो करके कर्त्तव्यवाद में मानव परिणित

हो जाता है। मुझे वह काल स्मरण आता रहता है, जिस काल में महर्षि वशिष्ठ मुनि महाराज के यहां नाना प्रकार की गोष्ठियां होती रहती थीं। भगवान राम, लक्ष्मण, शत्रुघ्न, भरत इत्यादि सब ब्रह्मचारी और भी ऋषि-मुनि विराजमान रहते। उनके यहां गोष्ठियां होतीं कि अयोध्या को कैसे ऊंचा बनाया जाए और त्याग कैसे अवरोध में लाया जाए? क्योंकि जितना मानव में त्याग होता है, त्याग से यह समाज ऊंचा बनता है, त्याग से राष्ट्र ऊंचा बनता है। त्यागी पुरुष ही यौगिकता में परिणित हो सकता है। यह वाक्य वह बारम्बार प्रकट कराते रहते थे कि राष्ट्र कोई मानव के लिए अनिवार्य नहीं है क्योंकि राष्ट्र तो उनके लिए होता है जो कर्त्तव्य से विहीन हो जाते हैं। राष्ट्र तो उनके लिये होता है जो कर्त्तव्य का पालन नहीं करते हैं। समय पर विद्या का अध्ययन न करना, विद्या से अपने को दूरी ले जाना, पांडित्य न रहना, यह सब राष्ट्र के लिए हानिकारक होता है।

मुनिवरो! राष्ट्र की आवश्यकता उन प्राणियों को नहीं रहा करती है जो विवेकी होते हैं, जो पांडित्यवादी होते हैं, जो वाणी से सत्य उद्घोष करने वाले हैं, जो अहिंसा परमोधर्म को अपनाने वाले हैं। वही उनका धर्म कहलाता है, उस काल में राष्ट्र की भी आवश्यकता नहीं होती। राष्ट्र वहां होता है जहां मानव अपने कर्त्तव्य का पालन नहीं करता। आत्मा का जो विरोध करता है, अन्तरात्मा कुछ कह रहा है, उसका वाह्य जगत कुछ और बना हुआ है, राष्ट्र उन्हीं के लिए हुआ करता है। आज का वाक्य हमारा क्या कह रहा है कि हम अपने में उस प्राणतत्त्व को जानते हुए अपनी आभा में सदैव रक्त रहें। ऋषि-मुनियों का जो मन्तव्य है, भारद्वाज मुनि महाराज ने विश्वविद्यालय में घोषणा करते हुए यहीं कहा है कि तुम्हारा राष्ट्र और तुम्हारी मानवीयता और विवेकता ऊंची होनी चाहिए, जिससे तुम्हारा आत्म तत्त्व महान बन करके, प्रभु के राष्ट्र में जा करके तुम अपना खिलवाड़ कर

सकते हो। परमपिता परमात्मा के राष्ट्र में आत्म तत्त्व को जानने वाला मानव ही भौतिक विज्ञान को अपने नीचे दबा लेता है और भौतिक विज्ञान भी उसके लिए खिलवाड़ बन जाता है। हम विशुद्ध रूप से प्राण को अपना अतिथि स्वीकार करें और विवेकी बन करके अपने राष्ट्र, समाज और मानवीयता को ऊंचा बनाने वाले हों।

मेरे प्यारे! हम याज्ञिक बनें। हम याज्ञिक कैसे बन सकते हैं? जब याग के कर्मकांडों में, क्रियाकलापों में मानव तत्पर हो जाता है तो वह क्रियाकलाप मानव को याग में ले जाते हैं। भारद्वाज मुनि ने रावण के यहां प्रातःकाल में याग किया और याग में उद्गीत गाते हुए कहा कि याग में एक अध्वर्यु होता है, उद्गाता होता है, पुरोहित जन, ब्रह्मा आदि विद्यमान हो करके अपने चित्रों का दर्शन करते हैं। इतने वैज्ञानिक होने चाहिए कि वह अपने चित्रों का दर्शन करने वाले हों। ऋषि ऐसे हों कि जो वायुमंडल में सूक्ष्म शरीर वाली आत्माएं हैं, उनके विचार मानवीय हृदयों में समावेश होने वाले हों। तो मुनिवरो! उस काल में विज्ञान अपने में सार्थक बना करता है। उन्होंने कहा कि जो द्रव्य का स्वामी होता है, साकल्य का स्वामी होता है उसे अध्वर्यु कहा जाता है। वह देवताओं के भोज का अध्वर्यु बन करके, जैसे अध्वर्यु नाम इस पृथ्वी को कहा गया है क्योंकि यह संसार के नाना प्रकार के साकल्यों को अपने में धारण करने वाली है और उन पदार्थों को, उस साकल्य को अग्नि को प्रदान करती रहती है।

उद्गाता जो उद्गीत गा रहा है, वही तो साकल्य पदार्थों को वेद-मंत्रों में द्वारा अपने में निगल जाता है और निगल करके उद्गीत के रूप में वही उद्गीत गाने वाला उद्गाता अग्नि को उसे समर्पित कर देता है और वह कहता है कि मेरे यजमान की वाणी में पवित्रता आ जाए। हे अग्नि! तू पापों का शोषण करने वाली है। हे अग्नि! तू ब्रह्मरूप बन करके वाणी के स्वरूप

को धारण करने वाली है। हे अग्नि! तू ही तो काष्ठों में रह करके साकल्य को अपने में धारण करने वाली है। ऋषि अग्नि के स्वरूपों का जब वर्णन करता है तो आचार्य मानम ब्रह्म, मुनिवरो देखो! यह याग एक महान बन जाता है। बुद्धिमान उसे कहा जाता है जो अपने स्वरूप का दर्शन करने लगता है, जैसे मानव मानवीयता का दर्शन करता है।

महर्षि भारद्वाज मुनि महाराज ने कहा कि यह पृथ्वी अध्वर्यु है, नाना प्रकार के साकल्यों को प्रदान करने वाली है। इसी अध्वर्यु के गर्भ में जब वैज्ञानिक प्रवेश होता है तो यह नाना प्रकार का साकल्य प्रदान करता है, नाना प्रकार के रसनों की आभा में उससे परिणित करा देता है तो वैज्ञानिकजन विज्ञान को अपना सदन बना करके विज्ञान की तरंगों में रत होने लगते हैं। वही पृथ्वी वसुन्धरा बन करके नाना प्रकार की धाराओं को अपने में सर्वत्रता को बसाने लगती है। तो हमारे यहां अध्वर्यु कौन है, जो द्रव्य का स्वामी है। इसीलिये हमारे यहां पृथ्वी को अध्वर्यु कहा गया है। हे अध्वर्यु! तू इस संसार को अपने में धारण करने वाला है। यह वाक्य गम्भीरता से प्रकट करते हुए भारद्वाज मुनि महाराज कहते हैं कि मेरे यजमान और ब्रह्मा ऊर्ध्वात्त्व को प्राप्त हो जाएं, उनकी वाणी पवित्र बन जाती है। यजमान कौन हैं? यह आत्मा ही तो यजमान है। नाना प्रकार का साकल्य आता रहता है और यह आत्मा यजमान बन करके अपने में पवित्र बनता हुआ, यह शरीर को भी पवित्र बनाता है। यह प्रकृति के तन्तु मन को भी ऊंचा बनाना चाहता है जिससे विवेकी बन करके हम प्रभु को प्राप्त हो जाएं। आज का विचार क्या कि हम प्राणतत्त्व को जानते हुए, मनस्तत्त्व की धारा को जानते हुए इस सागर की प्रतिभा से ऊंचे बनते चले जाएं।

बेटा! यह मन बड़ा विचित्र है। इस मन और प्राण की चर्चा तो मैं कल ही प्रकट करूंगा। आज का विचार तो केवल यह है कि राष्ट्र और

समाज में जितने विवेकी पुरुष विशेष होते हैं, उतना राष्ट्र और समाज ऊंचा बनता है। राजा के यहां विश्वविद्यालयों में याग होने चाहिए, प्राणायाम होना चाहिए, सर्वत्र विद्या को धारण करके अन्य क्षेत्रों में प्रवेश होना चाहिए। राजा अपने में प्राणायाम करने वाला हो। राजा यदि राष्ट्रीयता को ऊंचा बनाना चाहता है तो अपने मस्तिष्क, लघु-मस्तिष्क, रेणुमस्तिष्क, सब मस्तिष्कों में उसका आवागमन होना चाहिए। इसी प्रकार अन्तरिक्ष में भी जैसे यंत्र अणु और परमाणु से सुगठित होता हुआ गमन करता है, उसी प्रकार मानवीयता में भी यह कि राजा अपने में ऊंची उड़ान उड़ता हुआ इस सागर से पार हो जाए। यह है बेटा! आज का वाक्, कल समय मिलेगा तो शेष चर्चाएं कल प्रकट करेंगे। आज का वाक्य समाप्त, अब वेदों का पठन-पाठन।

सरोजनी नगर, नई दिल्ली

७-१०-१९८६

पंचीकरण का सूत्र

देखो मुनिवरो! आज हम तुम्हारे समक्ष पूर्व की भाँति कुछ मनोहर वेद मंत्रों का गुणगान गाते चले जा रहे थे। यह भी तुम्हें प्रतीत हो गया होगा आज हमने पूर्व से जिन वेद मंत्रों का पठन पाठन किया। हमारे यहां परम्परागतों से ही उस मनोहर वेदवाणी का प्रसारण होता रहता है जिस पवित्र वेदवाणी में उस महामना मेरे देव की महिमा का गुणगान गाया जाता है। वसुन्धरा के रूप में प्रायः उस परमपिता परमात्मा का वर्णन होता रहता है और यह कहा है कि वह माता वसुन्धरा के रूप में विद्यमान रहता है। परन्तु आज का हमारा वेद मंत्र और भी बहुत सी ऊँची-ऊँची उड़ाने उड़ रहा है और मानव को भिन्न-भिन्न प्रकार का संकेत अथवा ज्ञान और विज्ञान से परिपक्व वह जो महान उपदेश है, वह सदैव महानता के आंगन में निहित रहते हैं। प्रत्येक मानव परम्परागतों से ही उस परमपिता परमात्मा की महती का वर्णन करता रहा है और उसकी जो अनुपम महती है उसी में यह संसार अपने को प्रभु में स्वीकार करता रहता है।

हमारे यहां साधना वालों ने अपने बहुत से विचार व्यक्त किए हैं और यह कहा है कि मानव जब साधना में तत्पर हो जाता है तो वही साधना मानव को एक माधुर्य पगडंडी का ग्रहण करा देती है। प्रत्येक मानव उस पगडंडी में गति करना चाहता है। मुनिवरो! हमें इस महान पगडंडी को अपनाना है। परम्परागतों से ही यह अनूठा नृत्त प्रत्येक आभा में होता रहा है कि हम उस पगडंडी को ग्रहण करना चाहते हैं जिस पगडंडी पर जाने से हम वास्तव में अपने जीवन को पंचीकरण के रूपों में दृष्टिपात करने लगते हैं। हमारे

यहां पंचीकरण के सम्बन्ध में भिन्न-भिन्न प्रकार की धाराएं मानी गयी हैं। हमारे यहां जो पंच धाराएं हैं अथवा वह जो पंच तत्त्व माने गए हैं, प्रकृति का जो सूक्ष्मतम तन्तु माना गया है, उसको हमारे यहां पंचीकरण कहा जाता है।

वृक्ष के समीप आयुर्वेदाचार्य जब अन्वेषण करना प्रारम्भ करते हैं तो प्रत्येक वृक्ष में पंचीकरण निहित होता हुआ दृष्टिपात आता है। हमें यह विचार-विनिमय करना है कि वह जो मानवीयता में एक पंचीकरण की वार्ता आती है और पंचीकरण उसे कहते हैं जो पंच महाभूतों से निहित हो। जैसे हमारा मानवीय यह शरीर है, इसके पंचीकरण को जब हम जान लेते हैं तो हमें सोम की प्राप्ति होती है, वेद कहता है कि हमें सोम की प्राप्ति होती है। हमारे यहां आयुर्वेदाचार्यों ने तो भिन्न-भिन्न प्रकार की लताओं को भी सोम माना है। परन्तु जब पूर्णिमा का दिवस होता है तो चन्द्रमा की नाना प्रकार की जो कान्तियां हैं उनकी जब धाराएं प्रारम्भ होने लगती हैं और मानव के आज्ञा चक्र से उनका समन्वय होता है तो उन धाराओं का पान करने वाला सोमरसी कहलाता है। सोमरस के सम्बन्ध में प्राण का निदान किया जाता है। यह प्राण सखा इस शरीर में अपनी गतियां कर रहा है और एक दूसरे में प्राण का समावेश करते हुए वह भी सोमरस की आभा में निहित कहा गया है। प्रत्येक वृक्ष के पांचांग में भी सोमरस का पंचीकरण भासता रहता है। संसार में कोई भी ऐसा वृक्ष नहीं है जिससे हम पंचीकरण को अपने में न धारण कर सकें। वही पंचीकरण तो मानव को उद्बुद्ध करने वाला है।

यह जो मनन है यह भी पंचीकरण कहलाता है। यह मन प्रकृति के महान रूपों में रत होने लगता है क्योंकि मन प्रकृति का सूक्ष्मतम तन्तु माना गया है। यही मन तो घृणा का मूल है और यही घृणा को दूरी करने

वाला है, यही घृणा को आश्रय देने वाला है, यही राष्ट्रवाद का निर्माण करने वाला है। वह जो प्राण है वह आत्मा की आनन्दवत् छाया कहलाती है। जहां प्राण का, छाया का मन से समन्वय हुआ तो उसमें एक आनन्दमयी ज्योति जागरूक हो जाती है। जब इस वाक्य के ऊपर हम विचारने लगते हैं तो प्रायः ऐसा दृष्टिपात आता है कि यह मन और प्राण के सन्निधान मात्र से यह मानव क्रियाकलाप में लगा रहता है।

मुनिवरो! यज्ञशाला में जब ब्रह्मा यजमान को सम्बोधित करता है कि तेरे जीवन में पंचीकरण होना चाहिए। पंचीकरण का अभिप्राय यहां पांच यज्ञ माने गए हैं। ब्रह्म याग है, ब्रह्म याग में ब्रह्म का चिन्तन करना है और ब्रह्म का चिन्तन करने के पश्चात् वह देव पूजा में आरूढ़ हो जाता है। मैंने पूजा के सम्बन्ध में तुम्हें बहुत सी आख्यिकाएं वर्णन की हैं परन्तु जब न्यौदा में मंत्रों के गर्भ में प्रवेश करने लगते हैं तो वह जो पंचीकरण की वृत्तियां आती हैं, वह उस देव याग में भी विद्यमान हैं क्योंकि देवताओं का मुख अग्नि को स्वीकार किया गया है। सर्वत्र देवता अग्नि के आश्रित रहते हैं। आचार्य जब अपनी यज्ञशाला में विद्यमान होता है तो वह ब्रह्मा बन करके अग्न्याधान के लिए घोषणा करता है। अग्नि देवताओं का मुख है, अग्नि का अग्नि से समन्वय हो जाता है। यह वाणी भी अग्नि स्वरूप है और जो यज्ञशाला में प्रदीप्त होने वाली है, वह भी अग्नि है परन्तु दोनों प्रकार की अग्नियों का जब परस्पर समन्वय हो जाता है तो मानव अपनी महानता को प्राप्त होने लगता है।

मेरे पुत्रो देखो! वेद का ऋषि कहता है कि हम देवपूजा करें। पूजा का अभिप्राय यह कि उसका यथोचित आदर होना चाहिये, उन क्रियाओं में हमें लग जाना है। जैसे परमपिता परमात्मा ने सृष्टि के प्रारम्भ में पृथ्वी का निर्माण किया, इसकी एक मेखला का निर्माण किया, जिस मेखला में

जल का प्रोक्षण किया जाता है। वह जल अमृत है। इस संसार रूपी यज्ञशाला में समुद्र मेखला के रूप में विद्यमान है। इसी प्रकार जब हम अपने बाह्य या दैनिक क्रियाकलापों में प्रवेश करते हैं तो दैनिक कर्मकांडों में भी मेखला का सम्बन्ध है क्योंकि मेखला कहते हैं जहां जल की आभा वाचक होने लगती है। मेरे पुत्रो देखो! यह हमारा पंचीकरण कहलाया जाता है। मेरे पूर्वजों ने, आचार्यों ने उसकी ऊर्ध्वा में कल्पना करते हुए, ऊर्ध्वा में गति कराते हुए, अपनी आख्यिका प्रकट करते हुए कहा है कि यह जो हमारा पंचीकरण, मानो पंच याग है इनमें देवयाग विशेष माना गया है।

कर्मकांड की पद्धति में ब्रह्मा, आचार्यजन कहते हैं कि आओ, हे यजमान! तुम जल का प्रोक्षण करो, जैसे परमपिता परमात्मा ने इस पृथ्वी के विष को सिंचन करने के लिए समुद्र बनाया। वह पृथ्वी के विष को अपने में धारण कर लेता है। मेरे प्यारे! वही तो मेखला के रूप में विद्यमान है। वही जल है, वही आपो है, उस आपो की प्रतिभा एक आभा में निहित हो रही है। मेरे पुत्रो! ब्रह्मा या पुरोहित यजमान को उस स्थल पर ले जाता है जहां वह आचमन करता हुआ कहता है कि जब मैं माता के गर्भ स्थल में विद्यमान था तो मेरी रक्षा आपो ने ही तो की है। माता को ज्ञान नहीं है कि कौन रक्षा कर रहा है। वेद की आख्यिका कहती है कि आपो ही तो आसन बन करके रहता है, ओढ़न बन करके रहता है, आपो के ही पास बन जाते हैं। मेरे प्यारे देखो! वह जो आपोमयी ज्योति है उसका वह परोक्षण कर रहा है। उसमें कितनी आभा निहित है। पूजा का अभिप्राय यह है कि उसका हम सदुपयोग करें, यज्ञशाला में यह ज्ञान कराया जाता है।

मुझे वह काल स्मरण आता रहता है, जिस काल में विश्वविद्यालयों में आचार्यजन ब्रह्मचारियों को कर्मकांड की पद्धति, कर्मकांड की प्रतिभा उन्हें स्मरण कराते थे क्योंकि कर्मकांड ही अपने में एक महान कहलाता

है। वह याग की भूमिका कहलाती है, वह याग का एक उच्चतम कर्म कहलाया जाता है। जैसे वह अपने में तीन आचमन करके कहता है कि मेरा ओढ़न, मेरा आसन, सभी आपोमयी ज्योति कही जाती है, मेरा हृदय उससे संलग्न हो जाए, मैं कितना विचित्र बनने जा रहा हूँ। ऋषि अपने में यह वार्ता प्रकट कर रहा है तो यजमान आचमन करके दक्षिण और ऊर्ध्वा में गति करता हुआ वह देवत्व को प्राप्त होता है। वह अपने में स्वाहा कर रहा है कि मेरी वाणी पवित्र हो जाएं, मेरे नेत्र पवित्र हो जाएं मानो, सर्वत्र को निष्ठावान और संकल्पवादी बनाता है। जब संकल्पवादी बनाता है तो मुनिवरो! एक महती का दर्शन होता है। यह जो याग का पंचीकरण है, यज्ञों का विधान हमारे यहां बड़ा विचित्र माना गया है। आचार्यों ने और भी इसकी ऊंची-ऊंची कल्पनाएं की हैं। हमारे यहां नाना ऋषि-मुनियों का एक समाज जब एकत्रित होता है तो उनका विचार और उनका चिन्तन बड़ा गम्भीरता में मुद्रित हो जाता है।

मेरे प्यारे! मुझे स्मरण आता रहता है, नाना ऋषि-मुनियों का एक समाज विद्यमान है। उन्होंने परमाणुवाद की कुछ चर्चाएं कीं, कुछ याग की चर्चा की, कुछ मृत्यु की चर्चा की तो ऋषि व्रतकेतु अपने में सब ऋषियों के प्रश्नों का उत्तर देने लगे। उन्होंने कहा कि मेरे विचार में तो यह आ रहा है कि यह जो परमाणुवाद है, यह हमारे ऋषि-मुनियों के मस्तिष्कों में दो प्रकार से गति करता रहता है। एक गति ध्रुवा है तो एक ऊर्ध्वा है, एक अन्तिम शून्य बिन्दु पर है और दूसरी का शून्य बिन्दु से लेकर प्रारम्भ होता है। जैसे मुनिवरो! बहुत पुरातन काल में हमने निर्णय देते हुए कहा था कि जब नाना ऋषि-मुनियों का एक समूह विद्यमान हो गया तो वहां जब परमाणु की चर्चा होने लगी तो ऋषि ने कहा कि यह जो चन्द्रमा है, यह अपने में भासता है, यह अपने में प्रकाश देता रहता है। रात्रि अहिल्या को अपने में धारण करने वाला है, सहस्रों कान्ति वाला बन करके रात्रि अपने गर्भ में

धारण कर लेता है। ऐसा कौन है जो अपने गर्भ में धारण कर रहा है, वह चन्द्रमा कहलाता है जो रात्रि के वैभव को अपने में धारण कर लेता है। वह चन्द्रमा अमृत बहाता रहता है, अमृत को देता रहता है।

मुझे नाना वार्ताएं स्मरण आती रहती हैं। एक समय ब्रह्मचारी कबन्धि पुष्पांजलिओं को पनपाने के लिए जल का परोक्षण कर रहे थे तो सुकेता ने कहा कि भगवन् क्या कर रहे हो? तब उन्होंने कहा कि मैं वृक्ष को सिंचन कर रहा हूं। उन्होंने कहा तुम वृक्ष का सिंचन क्यों कर रहे हो? उन्होंने कहा कि चन्द्रमा से इसमें रस आया अमृत बन करके, तो मैं उस अमृत को दृष्टिपात करूंगा। उस वृक्ष में तो पूर्व ही पंचीकरण था। जब चन्द्रमा अपनी आभा में छिटकने लगा तो अहिल्या को अपने में धारण करता हुआ वह उसे अमृतमयी बनाने लगा। कृषक के यहां एक पौधा है, उस पौधे पर दो प्रकार के अन्न विद्यमान हैं। उस अन्न में चन्द्रमा अमृत दे रहा है। कृषक प्रसन्न हो रहा है। मेरी कृषि बड़ी प्रियता में हो गई है, उपजने लगी है, इसको सोम का रस प्राप्त हुआ है। वह चन्द्रमा का रस प्राप्त होने लगा।

एक समय मैंने महर्षि कागभुषंड जी की माता से यह कहा कि हे माता! जब महर्षि कागभुषंड जी आपके गर्भ में विद्यमान थे तो आपने कौन से अमृत का पान किया। माता नहीं जानती थी परन्तु वह तपों में निहित रहती थी। उन्होंने कहा कि मैं तप तो करती रही परन्तु मैं ओतप्रोत नहीं हुई तो विचार आया कि वह जो चन्द्रमा का सोम था, वह माता की रसना के निचले विभाग में उसको परमपिता परमात्मा परोक्षण करने लगा। मुझे कुछ ऐसा स्मरण है कि माता नहीं जानती कि कौन अमृत दे रहा है, कौन सी नाड़ी के द्वारा अमृत प्राप्त हो रहा है? जब मैं नाड़ी क्षेत्र में प्रवेश करता हूं तो माता निरुत्तर हो जाती है। उसमें नाड़ियों का एक पंचीकरण होता है। रसना के निचले विभाग में चन्द्रकेतु नाम की एक नाड़ी है, उस नाड़ी की

एक धारा है जिसको व्रेतकेतु नाड़ी कहा जाता है। उस नाड़ी का सम्बन्ध माता की पुरातत नाम की नाड़ी से होता है। पुरातत नाम की नाड़ी का समन्वय माता की रीढ़ से होता है, रीढ़ से पंचम नाड़ी बन करके चलती है। वह लोरियों से ले करके नाभि केन्द्र में प्रवेश कर जाती है। तो नाभी से जो नाड़ी का समन्वय होता है वह पंचम नाड़ी कहलाती है, जिसको हमारे यहां पंचीकरण कहा जाता है।

यह जो चन्द्रमा है यह पंचीकरण कहलाता है। परन्तु ऋषि-मुनि बड़े विचित्र होते हैं, उन्होंने कहा कि वही पंचीकरण समुद्रों में प्रवेश कर रहा है। जब पूर्णिमा रात्रि आती है, पूर्णिमा का दिवस होता है तो यह चन्द्रमा से अमृत को अपने में सिंचन कर लेता है, अपने में ग्रहण कर लेता है। जब यह अमृतमयी बन जाता है, अमृत को प्राप्त कर लेता है तो मानव भी अमृतमयी बनता हुआ रमण करता है। अन्तरिक्ष में चन्द्रमा जल के परमाणुवाद को स्थिर करने वाला है। वह धीमी-धीमी वृष्टि के रूप में परिणित हो जाता है। अरे! वही तो अमृत है जो नाना प्रकार के व्यंजनों को जन्म देता है, जो नाना प्रकार के खाद्य और खनिज पदार्थों को ऊंचा बनाता है। तो विचार यह चल रहा था कि चन्द्रमा सोम की वृष्टि करने वाला है। जो उसे पान कर लेता है, वह अमृतमयी बन जाता है।

मैंने तुम्हें एक समय वर्णन किया था कि अश्वनि कुमार जो महाराजा रावण के यहां वैद्यराज थे, उनकी जो माता श्वेध्वनि पूर्णिमा के दिवस चन्द्रमा की कान्तियों को अपने शरीर में सिंचन करती रही है और उनके गर्भ से उत्पन्न होने वाले अश्वनि कुमार, दो पुत्रों का जन्म हुआ, जिन अश्वनि कुमारों की चर्चाएं मैंने कई काल में वर्णन की हैं कि वह कितने वैद्यराज थे, उनकी कितनी आयुर्वेद पर गति थी। यह चर्चा तो हम फिर करेंगे, आज का विचार तो हमारा यह है कि माता ने उसका निर्माण कर दिया और उस पंचीकरण में परिणित करके एक आभामयी जीवन में पहुंचा दिया।

मेरे पुत्रो! हमारा यह विचार चल रहा है कि हम अपने में पंचीकरण करते हुए चन्द्रमा की धारा में रत्त हो जाएं। जब चन्द्रमा की धाराएं समाप्त होने लगीं तो वह लोकों का वर्णन करने लगे। वह जो नाना प्रकार के तारा मंडलों की एक माला है और एक-एक माला का अपना-अपना महत्व है। कोई वैज्ञानिक तो पृथ्वी और कोई सूर्य के मध्य वाली माला को धारण करता है। कोई यह कहता है कि नहीं, सूर्य की माला को धारण किया जाए। चन्द्रमा की जो प्रतिभा अथवा उसकी जो प्रतिष्ठा है, वह सूर्य में ओतप्रोत हो जाती है। मैंने कई काल में तुम्हें सूर्य का वर्णन करते हुए कहा है कि यह जो सूर्य है, यह महानता वाला है। यह द्यौ से प्रकाश लेता है, यह प्रत्येक प्राणी को ऊर्जा देता है। राजा रावण के यहां एक वैद्यराज थे, वह वैद्यराज एक समय भयंकर वनों में चले गए, पर्वतों की कन्दराओं में चले गए तो उन्होंने एक औषध को दृष्टिपात किया। प्रातःकाल से उसका उदय होना प्रारम्भ होता था और सांयकाल को उसी औषध का क्षय हो जाता था। मध्य दिवस में पूर्ण हो करके उसकी प्रतिभा समाप्त हो जाती। वैद्यराज ने उस औषध को दृष्टिपात किया कि सूर्य के उदय होने पर उसकी प्रतिभा महान है परन्तु अस्त होने पर वह औषध और प्रकार की बन गयी है। इसका निदान करना, अन्वेषण करना, विचार-विनिमय करना यह महानता का एक नूत कहलाता है।

सूर्य ऊर्जा के देने वाला है, यह प्रकाश में पहुंचाने वाला है। प्रत्येक मानव को प्रकाश में रत्त रहना है, प्रकाश के पुंज में पहुंचना है। यह सूर्य भासता रहता है। यह अमृत है, ब्रह्मचारी है, आदित्य है, यही ऊर्जा का पतित्व माना गया है। यह याग को अपने ही गर्भ में धारण कर लेता है और धारण करके व्यंजनों का जन्म देता है। तो मुनिवरो! यह सूर्य अपने में आभा वाला है। परन्तु यह जब भी समापन होने लगा तो ऋषि ने विचारा कि अब मैं मालाओं में जाना चाहता हूं, वह मालाएं जिनको वैज्ञानिकजन, आचार्यजन

धारण करके अपने को शून्य बिन्दु में ले जाते हैं। मैंने बहुत पुरातन काल में निर्णय देते हुए कहा था कि जब लोकों की गणना करने लगते हैं तो हम मौन हो जाते हैं क्योंकि ब्रह्मांड का वर्णन पूर्ण-रूपेण किया नहीं जाता परन्तु जितना भी अनुसन्धान ऋषि-मुनियों ने किया है वह बड़ा अद्वितीय किया है। मेरे प्यारे महानन्द जी ने मुझे यह वर्णन कराया कि वर्तमान का विज्ञानवेत्ता १३,००,००० पृथ्वियों तक जान पाया है परन्तु जब हम वेद के वांग्मय में प्रवेश करते हैं और लघुमस्तिष्क में ध्यानावस्थित होते हैं तो विचारा गया है कि ३०,००,००० पृथ्वियों को विज्ञानवेत्ताओं ने जाना है। इसकी एक माला बनती है, उस माला को भक्तजन, प्रभु के जो महान पुजारी होते हैं वह अपने में धारण करने लगते हैं। वह एक विचित्र माला बन करके हम उसे अपने में धारण करने लगते हैं।

मैंने बहुत पुरातन काल में निर्णय देते हुए कहा था कि यह जो तारा मंडलों का एक समूह बना हुआ है, तारा मंडलों की एक प्रतिभा बनी हुयी है, वही तो महानता वाली एक ज्योति कहलाती है जिस ज्योति का अनुभव करता हुआ मानव अपने में ज्योतिवान बन जाता है, पवित्र बन जाता है। ऐसे-ऐसे तारा मंडल प्रभु के राष्ट्र में हैं जिसमें एक सहस्र सूर्य समाहित हो जाते हैं। जब इस सीमा पर जाते हैं तो विचार आता है कि शून्य बिन्दु पर गणना का क्षय हो जाता है। तो विचार-विनिमय क्या कि यह पृथ्वी अपने में महानता वाली है और इन पृथ्वियों की माला को सूर्य अपने में धारण करता वह अपनेपन की आभा को प्राप्त होने लगता है। विचार यह चल रहा है कि हम अपनेपन में ही अपनी आभा को दृष्टिपात करते रहें। यह तारा मंडलों की जो माला हैं, एक माला नहीं, दो माला नहीं, अनन्तमयी माला हैं, जिस माला में एक-एक सौर-मंडल समाहित रहता है। वह सौर-मंडल समाहित रहता हुआ आकाश गंगा को धारण करने वाला शिव कहलाता है। जब हम विचारते हैं कि गंगाओं को कौन धारण कर रहा है,

अरबों-खरबों सौर-मंडलों में गति कराने वाला कौन है, कौन धारण कर रहा है? अरे! वही तो शिव कहलाता है। जो इस संसार को पिंड के आकार में, अंडाकार में इस ब्रह्मांड का निर्माण करता है, जो इसे अपने में धारण कर रहा है, वह शिव कहलाता है।

मुनिवरो! विचार क्या कि परमपिता परमात्मा एक महान अनन्तमयी कहलाते हैं। इस माला का अन्तिम जो मनका है वह गन्धर्व कहा जाता है और गन्धर्व से पूर्व नाना मंडलों की चर्चाएं होती रहती हैं। आज मैं उस विचारों में जाना नहीं चाहता हूं क्योंकि यह तो लोक-लोकान्तरों का विशाल वन है। ऋषि कहता है कि यह गन्धर्व अपने में प्रतिष्ठित होता हुआ इन्द्र कहलाता है। हमारे यहां उस परमपिता परमात्मा, राजा, सूर्य, विद्युत और द्यौ को भी इन्द्र के रूप में परिणित किया गया है। जो राजा १०१ अश्वमेध याग कर लेता है और जिसका संसार में कोई भी बहिष्कार करने वाला न हो, सब उसका आदर करने वाले हों तो वह इन्द्र कहलाता है। अश्वमेध याग का अभिप्राय क्या है? मैंने तुम्हें कई काल में वर्णन करते हुए कहा था कि अश्व नाम राजा का और मेध नाम प्रजा का कहलाता है। सर्वत्र प्रजा राजा की आज्ञा से याग में सम्मिलित हो जायें तो वह सर्वोपरि राजा कहलाया जाता है, वह इन्द्र है, वह इन्द्रत्व कहलाता है। और भी नाना प्रकार की इसकी विवेचनाएं हैं जिसे हम विद्युत रूप में, द्यौ के रूप में प्रकट करते रहते हैं।

विचार क्या मुनिवरो! वह इन्द्र है, वह सखा है, वह इन्द्र हमारा पालन करने वाला है। इन्द्र एक लोक को भी कहा जाता है, जिसमें गन्धर्व समाहित होता है उसे भी इन्द्र कहते हैं। इन्द्र का प्रकरण बड़ा विचित्र है, मन से इसका समन्वय रहता है। यह जो प्रकृति का सूक्ष्मतम तन्तु है इसका नाम भी इन्द्र कहा जाता है और वह मनस्तव के रूप में प्रकट होता रहता

है। यह जो मन है यही तो सर्वत्र सृष्टि की आभा को अपने द्वारा लाता है, समाज को महान बनाता रहता है। तो विचार विनिमय क्या? प्राण का सन्निधान मात्र मन के साथ होते ही मन अपनी प्रकृति को जानने लगता है, उसके गर्भ में प्रवेश होने लगता है। कहीं भी उसे प्रकृति का तन्तु प्राप्त हो जाए, वहीं मन अपनी आभा को ले करके प्रस्तुत हो जाता है। यह जो इन्द्र है, यह इन्द्र हमारा सखा है, महान है, पवित्र है, हमें इन्द्र की उपासना करनी है। परन्तु इन्द्र क्या है? आत्मा का नाम इन्द्र है। जो इन्द्र आत्मा है, वही तो शरीर में भासता रहता है। जब तक इसमें इन्द्र है, जब तक यह शरीर है। इन्द्र के विच्छेद होने से यह शरीर शून्य हो जाता है।

आगे वेद का वाक्य कहता है, वेद की आख्यिका कहती है कि हम इन्द्र से आगे जब गति करने लगें, तो प्रजापति का अवसान आता है और कहता है कि प्रजापति ही महान है। प्रजापति ही याग कहलाता है। इस संसार की रचना प्रजापति से कहलाती है। माता के गर्भ स्थल में जब बिन्दु का वास होता है तो उसी बिन्दु से पूर्णता की प्राप्ति हो जाती है। वही तो प्रजापति की रचना है। वही तो प्रजापति कहलाता है जो हमारा कल्याण करता है। नाना प्रकार की वनस्पतियों के रसों का जो अन्तिम सार है, उसे प्रजापति कहते हैं। वही तो प्रजापति बन करके इस संसार को निर्माणित कर रहा है। चाहे वह पृथ्वी मंडल हो, चाहे वह चन्द्रमंडल हो, चाहे वह कोई भी लोक-लोकान्तर क्यों न हो, चाहे समुद्रों के गर्भ में हो, चाहे समुद्रों के ऊपरी तल पर हो परन्तु वह सब प्रजापति क्रियाशील हो रहे हैं, वही तो प्रजापति है।

एक समय बेटा! माता ब्रेणकेतु से हमने कहा कि हे माता! प्रजापति कहां रहता है तो माता ने उत्तर दिया कि प्रजापति वहां रहता है, जहां माता रहती है। हमने कहा माता तो हम प्रभु को कहते हैं, उन्होंने कहा कि प्रभु

ही तो प्रजापति है। हमने कहा कि माता तो हम गौ को कहते हैं, उन्होंने कहा गौ ही तो प्रजापति है। हमने कहा माता तो हम विद्या को स्वीकार करते हैं, उन्होंने कहा विद्या को मन्थन करने के पश्चात् जो ज्ञान की उपलब्धि होती है, वही तो प्रजापति है। हमने कहा प्रजापति तो हम योग को स्वीकार करते हैं, उन्होंने कहा योग के सन्निधान, दोनों का मिलन होने से जो आनन्द की प्राप्ति होती है, उसी का नाम प्रजापति है, वह प्रजापति ही दृष्टिपात आने लगता है। हमने कहा भगवन्! हे माता! हम तो तुम्हें माता स्वीकार करते हैं, उन्होंने कहा तो मेरे ही समक्ष प्रजापति विद्यमान रहता है। हमने कहा कि हम तो माता कान्ति को कहते हैं, जो ज्योति है। उन्होंने कहा कि जो ज्योति का आयतन है, वही तो प्रजापति है। हमने कहा हम तो प्रजापति याग को स्वीकार करते हैं। उन्होंने कहा कि याग में जो ब्रह्मा है, वही तो प्रजापति के स्वरूप में विद्यमान रहता है। जब ऋषि ने इस प्रकार वर्णन किया, आभा प्रकट की तो माता ने उन्हें निरुत्तर कर दिया। ऋषि ने कहा कि हे माता! हम तो मोक्ष को प्रजापति कहते हैं। उन्होंने कहा जिसके लिए मोक्ष होता है वही तो प्रजापति है।

जब इस प्रकार की विवेचना होने लगी तो ऋषि अपने में शान्त हो गए। वह प्रजापति पर न जा करके अब वे याग पर प्रतिष्ठित हो गए। उन्होंने कहा कि यह प्रजापति ही तो याग है, यह प्रजापति कहां निहित है? उन्होंने कहा कि याग में रहता है। याग किसे कहते हैं? जितना भी संसार का सुकर्म है, जिससे मानव की अन्तरात्मा को अन्तर्हृदय से महानता प्राप्त होती हो, चित्त प्रसन्न होता हो, उस क्रिया का नाम ही तो याग कहलाता है। एक यजमान बन करके अग्न्याधान में विद्यमान है, उनकी धाराओं पर वह विज्ञान के वाग्मय में प्रवेश करके संसार को दृष्टिपात कर रहा है, वह विज्ञान के युग में चला गया है, विज्ञान के युग में उसकी प्रतिष्ठा हो गयी है, वही तो याग कहलाता है। याग में परिक्रमा हो रही है, जल

का सिंचन हो रहा है, पति-पत्नी अपनी इच्छा पूर्ति के लिए याग कर रहे हैं, वही तो याग है। राजा अपनी प्रजा को ऊंचा बनाने के लिए, निर्भयता के लिए याग कर रहा है, वह प्रभु का स्मरण करता हुआ याग करता है। वही तो याग कहलाता है जो निर्भयता की प्रतिभा प्रदान करने वाला है। अग्नि की धाराओं पर सर्वत्र यागों का क्रियाकलाप निहित रहता है।

हमारे आचार्यों ने दक्षिणा की बड़ी विचित्र व्याख्या की है। उन्होंने कहा कि जिस याग में, जिस क्रियाकलाप में, जिस दक्षिणा में याग समाहित होता हो, अरे! वह याग है या दक्षिणा है? तो उन्होंने वर्णन किया कि याग में दक्षिणा है, दक्षिणा में याग है। उसका अभिप्राय यह है कि पुरोहित कहता है कि हे यजमान! तेरे हृदय में जितनी दुरिता है, काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार की जो त्रुटियाँ हैं, तू उसे इस यज्ञरूपी देवपूजा में भस्म कर दे। जब तू उसको समर्पित करने वाला बने तो तू दक्षिणा का पूर्णतः अधिकारी बन जाएगा।

मेरा दक्षिणा का अभिप्राय केवल यह है कि यजमान का हृदय सुगन्धियुक्त होता हुआ, विचारों में महानता की ज्योति जागरूक होते हुए जो दक्षिणा है वही तो आचार्य का प्राण है, वही तो यजमान की वेदी है। वेदी और प्राण दो नहीं हो सकते। दोनों एक ही सूत्र के मनके हैं, जैसे मन और प्राण शरीर में आत्मा की छाया है। इन दोनों का सन्निधान होना ही, समन्वय होना ही एक दूसरे में ओतप्रोत होना है। आगे वेद का आचार्य मननशील होता हुआ कहता है कि भवद् द्रव्हे रूताम ब्रह्माः वाचन नमम् ब्रह्मेः क्रताम, दक्षिणा से श्रद्धा का जन्म होता है। श्रद्धा में ही दक्षिणा है। श्रद्धा कहते हैं जिससे अटूट समन्वय हो जाता है। जैसे सूर्य का, चन्द्रमा का अपने में आकाश से समन्वय रहता है। पृथ्वी का, जल का आकाश

से समन्वय रहता है। सर्वत्र प्रजापति का ही तन्तु-सूत्र दृष्टिगोचर होता रहता है। सर्वत्र पंचीकरण के सूत्र में प्रजापति विद्यमान है।

तो मुनिवरो! आज के हमारे वाक्य उच्चारण करने का अभिप्राय यह है कि हम परमपिता परमात्मा की आराधना करते हुए, उसकी महिमा का गुणगान गाते हुए अपने जीवन को ऊर्ध्वागति में ले जाएं और इस संसार सागर से पार हो जाएं। बेटा! यदि समय मिलेगा तो शेष चर्चाएं कल करेंगे, आज का वाक्य समाप्त।

सरोजनी नगर, नई दिल्ली

८-१०-१९८६

बलिवैश्वदेव यज्ञ

देखो मुनिवरो! आज हम तुम्हारे समक्ष पूर्व की भांति कुछ मनोहर वेद मंत्रों का गुणगान गाते चले जा रहे थे। यह भी तुम्हें प्रतीत हो गया होगा आज हमने पूर्व से जिन वेद मंत्रों का पठन पाठन किया। हमारे यहां परम्परागतों से ही उस मनोहर वेदवाणी का प्रसारण होता रहता है जिस पवित्र वेदवाणी में उस मेरे देव की महिमा का गुणगान गाया जाता है। वह मेरा देव महिमावादी है और वह अनन्तता में ही रमण करने वाला है, उसका ब्रह्मांड अनन्तमयी माना गया है। मानव जब उसके सम्बन्ध में विचार विनिमय करने लगता है तो विचारता-विचारता वह गम्भीर मुद्रा में मुद्रित हो जाता है परन्तु उसकी जो महती अथवा अनन्तता है, उसके जब अन्तिम छोर तक जा नहीं पाता तो वह मौन हो जाता है। इसीलिए हमें उस परमपिता परमात्मा की महिमा का गुणगान गाना चाहिए क्योंकि वह इतना अनन्तता को चाहने वाला है, वास्तव में वह उसका स्वामित्व करने वाला है। हमें उस परमपिता परमात्मा की उपासना करनी चाहिए जो कण-कण में ब्रह्मांड को रचने वाला है। जैसा यह बाह्य जगत में ब्रह्मांड हमें दृष्टिपात आ रहा है, इसी प्रकार जब आन्तरिक जगत में अथवा सूक्ष्म जगत में हम प्रवेश होते हैं तो वहां भी उसी प्रकार अनन्तता में दृष्टिपात आने वाला है। उस अनन्तमयी ब्रह्मांड की रचना के ऊपर विचार विनिमय करते हुए हम उसके गुणगान गाने के लिए तत्पर हो जाएं।

आज का हमारा वाक्य हमें अनन्तता में ले जा रहा है। हमें उस महान याग में ले जा रहा है, जिस याग की रचना परमपिता परमात्मा ने

की है। वह ब्रह्मांड अनन्तता में रत है और मानव उसके ऊपर कल्पना करता रहता है। हम उस परमपिता परमात्मा की आराधना करते हुए देव की महिमा का गुणगान गाते हुए अनन्तमयी रचना का जो मूलक है, उसकी हम उपासना करते चले जाएं। प्रत्येक वेद मंत्र हमें एक न एक ऊंची प्रेरणा देता रहता है और हम प्रायः उस प्रेरणा के स्रोत बन जाते हैं, उसी प्रेरणा को पा करके हम अपने में रत हो जाते हैं। आज मैं तुम्हें एक आखिरी काल में ले जाना चाहता हूँ, जो वाक्य हमने बहुत पुरातन काल में भी वर्णन किया है और हम करते ही रहते हैं।

मुनिवरो! आज मुझे वह काल स्मरण आ रहा है जिस काल में महर्षि वैशम्पायन मुनि अपने में ऊंचे-ऊंचे विचार विनिमय करते रहते थे। एक समय वह महाराजा अश्वपति के याग में से अपने आश्रम में पधारे। रात्रि का जब काल हुआ, वह निद्रा की गोद में चले गए तो एक वेद मंत्र के ऊपर वह अपना विचार विनिमय करने लगे। बेटा! वेद मंत्र यह कह रहा था कि यह चित्र अन्तरिक्ष में गतियां करते रहते हैं और रथ बन करके द्यौ लोको में प्रवेश होता रहता है। मैं उस द्यौ लोको वाले रथ को दृष्टिपात करना चाहता हूँ इस चिन्तन में रत रहते उन्हें निद्रा आ गयी। मध्यकालीन जब निद्रा जागरूक हो गयी तो पुनः से वही वेद मंत्र स्मरण आने लगे। इसके ऊपर विचार विनिमय होने लगा, ऋषि अपने में कोई निपटारा नहीं कर पा सका।

प्रातः काल हो गया, सूर्य उदय हो गया, ऋषि अपने आसन को नहीं त्याग रहा था तो आंगन में रहने वाले जो ऋषि-मुनि थे, उन्होंने विचारा कि आज तो ऋषि अपने आसन को नहीं त्याग रहा है, उसके मूल में क्या है। महर्षि विभांडक मुनि और शौनक ऋषि ने जब जा करके कहा कि महाराज! आप निद्रा से क्यों नहीं जागरूक हो रहे हैं तो उन्होंने कहा कि

भगवन्! मैं इसलिए आसन नहीं त्याग रहा कि एक वेद मंत्र मुझे स्मरण आ रहा है, यह कह रहा है कि मानव तो पंचीकरण वाला है। ऋषियों ने कहा कि यह पंचीकरण क्या है? वैशम्पायन ने कहा कि पांच तत्वों के ऊपर विचार विनिमय करने वालों को पंचीकरण वाला कहा जाता है। जो पांचों प्रकार के यागों में संलग्न होने वाला है, जो इनमें अपनी वृत्तियों को अर्पित कर देता है, वह पंचीकरण वाला कहलाता है।

ऋषियों ने कहा तो भगवन्! यह पंचीकरण पांच यज्ञ वाला है या पांच तत्वों वाला है? उन्होंने कहा कि यह जो पंचीकरण है, यह महाभूतों वाला भी है और यज्ञों वाला भी है। ऋषियों ने कहा कि यह कैसे माना जाए? उन्होंने कहा कि पांच प्रकार के यागों में जो मानव अपने जीवन को अर्पित कर देता है, जैसे ब्रह्म याग है, देव याग है, पितृ याग, अतिथि याग है, बलिवैश्व यागों में लगा रहता है। बलिवैश्व याग का अभिप्राय यह है कि जितने भी प्राणी अन्तरिक्ष में गमन करने वाले हैं, जलों में गमन करने वाले प्राणी हैं, इनके ऊपर जो विचार विनिमय करता है अथवा इनको भोज्य जो देता है, वह बलिवैश्व याग करने वाला है। हमारे यहां साम्यवाद की प्रवृत्ति का विकास बलिवैश्व यागों से होता है। जहां सब प्राणियों का भाग मानव उन्हें प्राप्त कराता है वह बलिवैश्व याग करने वाला है। वास्तव मैं तो ब्रह्मवर्चोसि अथवा जो ब्रह्म है, जो संसार का नियन्ता है, वह सबको उसी प्रकार का भोज्य प्रदान करता है, जैसा वह प्राणी होता है। इसी प्रकार वह मानव ब्रह्मवत कहलाया जाता है।

बलिवैश्व याग वाला जलचरों को और पास में गमन करने वालों को दृष्टिपात करता है कि वह कैसे सृष्टि का निर्माण करते हैं? एक पौधे के अन्न को उन्होंने पान किया परन्तु उस का जो अंकुर रूप है वह उनके शरीरों में प्रवेश करता है। अपने स्रोतों के द्वारा वह दूसरे स्थान को जाते

हैं तो नाना प्रकार की वनस्पतियों का जन्म होता रहता है। जैसे हमारे यहां पति और पत्नी का समन्वय होता है, इसी प्रकार यह भी अपने में समन्वय की प्रवृत्तियों को धारण करते रहते हैं। एक स्थान से दूसरे स्थान पर अंकुरों का जन्म होता रहता है। मुनिवरो! जो इस प्रवृत्ति को जानता है, वह मानव प्रभु के राष्ट्र को अच्छी प्रकार जानने लगता है और साम्यवाद का उसी से निर्माण होता है। हमारा याग यही तो कहता है कि मानव सामूहिक प्रवृत्तियों में सलग्न हो जाता है। वेद मंत्र को गायन रूप में गाता हुआ वह अपने में साम्यता की कल्पना करता है। सब मानव एक सूत्र के ही तो मनके कहलाते हैं।

एक सूत्र के मनके किस प्रकार हैं? जैसे एक मानव का चरित्र, मानव का आहार अशुद्ध हो जाता है तो शुद्ध प्राणी उस मानव की चर्चा करते हैं और यह कहते हैं कि इसका विनाश होने वाला है क्योंकि इसका अशुद्ध व्यवहार बन गया है। प्राणी ऐसा क्यों कहते हैं? इसके मूल में यह है कि हम सब प्राणी एक ही सूत्र के मनके हैं। माला का यदि एक मनका भ्रष्ट हो जाता है तो मनका अपने में उस मनके को स्वीकार नहीं करता है। उसका विच्छेद जब हो जाता है तो तब माला के रूप में दूसरे मनके को स्थापित किया जाता है और वह माला उसी प्रकार पवित्र बनती है। उसी प्रकार हम सब प्राणी एक सूत्र के मनके हैं। हमारा आहार-व्यवहार इतना पवित्र रहना चाहिए जिससे प्रभु की रचायी हुयी जो अनुपम माला है वह एक सूत्र में पिरोयी रहनी चाहिए। जब मैं माला की चर्चा करता हूं तो मुझे एक नवीन संसार दृष्टिपात आने लगता है। माला मानव चरित्र में ही नहीं आती, नाना लोक-लोकान्तरों की भी माला बनती है।

इससे पूर्व मैंने तुम्हें माला का वर्णन किया था। महर्षियों के समाज में यह चर्चा होती रहती है कि माला को कौन धारण करता है और कैसे

माला बनती रहती है? महर्षि वैशम्पायन और शौनक मुनि महाराज दोनों का परस्पर विचार विनिमय होने लगा। विभांडक मुनि भी विचारने लगे और उन्होंने यह कहा कि जो पंच यागों में लगा रहता है, यह तो मानवीय पंचीकरण कहलाता है और एक पंचीकरण पंच महाभूतों को कहा जाता है। ऋषि याज्ञवल्क्य मुनि महाराज ने और भी नाना ऋषियों ने इस पर अपने विचार दिए हैं। उन विचारों में हम रत्न रहना चाहते हैं। वह विचार क्या है कि यह माला है, इस माला को हमें धारण करना है, चाहे वह माला विज्ञान के रूप में हो, चाहे वही माला लोक लोकान्तरों के रूप में हो, चाहे वही माला पंच महाभूतों के रूप में हो।

जब प्रतिष्ठा की चर्चा आती है तो नाना प्रकार के ऋषियों ने अपने ऊंचे-ऊंचे विचार दिए। उन्होंने कहा कि सबसे प्रथम यह जो पृथ्वियां हैं यह गुरुत्व को धारण करने वाली है। जितनी भी गुरुत्व मनकों की माला हैं, इस माला को जान लेना चाहिए। जैसे पृथ्वी है, इसमें गुरुत्व होता है और जहां गुरुत्व होता है वहां नाना प्रकार के पदार्थों का निर्माण होता रहता है। चाहे वह पृथ्वी लोक हो, चाहे मंगल लोक हो, जहां भी पार्थिव तत्व प्रधान होगा वहीं वस्तुओं का निर्माण होगा। आपोमयी ज्योति जिस स्थिति पर प्रधानता में होती है, वहां जल उसी प्रकार के खनिजों का निर्माण करते रहते हैं। यह जो मनका है इसे आपोमयी ज्योति कहते हैं। **आपोमयी ज्योति जल को कहा जाता है।** जहां भी गुरुत्व ऊर्ध्वा में है उसी गुरुत्व के साथ आपो का गमन हो गया है। वहीं तो आपो बन करके माता के गर्भ में हम शिशु के रूप में प्रवेश करते हैं और माता शिशु के रूप में धारण करने वाली है। माता माला के रूप में प्रकट होने लगती है और शिशु उस माला को धारण कर लेता है जिससे उसे एक-न-एक नवीनता की प्राप्ति होने लगती है। माता से मैं कोई प्रश्न करूं तो उससे मुझे कोई उत्तर प्राप्त नहीं

हो पाता। परन्तु जब वेद मंत्रों के वांग्मय में प्रवेश करते हैं तो उस समय यह प्रतीत होता है कि वास्तव में वेद क्या कहता है। वेद कहता है कि शिशु रूपी जो सूत्र बन गया है, उस सूत्र में देवताजनों का वास हो गया है और वह देवताजन कौन हैं? वह कहीं आपोमयी ज्योति कहलाते हैं। आपोमयी जो ज्योति है, वही तो ज्योति प्रदान करने वाली है। उसके अन्दर देवताजन वास कर गए हैं, चन्द्रमा और सूर्य, आपोमयी सर्वत्र उसमें ओतप्रोत हो गए हैं।

आपो ज्योति बन करके यजमान यज्ञशाला में विद्यमान होता है तो वह तीन आचमन करता है और आचमन करता हुआ कहता है कि हे जल! हे आपो ज्योति! तू अमृत को प्राप्त कराने वाला है। हे अमृत! मैं तुझे पान कर रहा हूँ और तू मेरा साथी बना हुआ है। तू तो मेरा जन्म-जन्मान्तरों का साथी बना हुआ है। जब मैं माता के गर्भस्थल में विद्यमान था, उस समय आपो ही तो मेरा साथी बना हुआ था। आपो को ही मैंने ओढ़न बनाया, आपो को ही मैंने आसन बनाया और मैं उसमें पनप रहा था। हे अमृतमयी ज्योति! तू ही तो तीन आभा वाली कहलाती है, तू ही तो मुझे श्रद्धा देती है। तेरे द्वारा ही तो मैं पूजन कर सकता हूँ, तू ही मेरा साथी है। जब मेरी प्राणशक्ति जाती है तो मैं तेरा पूजन करता हूँ, तू मेरे समीप आकर जब मेरा जीवन बन जाता है तो मैं पवित्र बन जाता हूँ। यजमान अपनी यज्ञशाला में विराजमान हो करके उस सूत्र की कल्पना कर रहा है जो सूत्र माता के गर्भस्थल में भगवान ने तुझे प्रदान कर दिया था, वह परमपिता परमात्मा जो देवों का भी महादेव कहलाता है।

वेद के मंत्रों ने जब यह निर्णय दिया तो वैशम्पायन मुनि महाराज और नाना प्रकार के ऋषियों के मध्य में चर्चाएं होने लगी। महर्षि विभांडक ने कहा कि धन्य है प्रभु! आप निर्णय दीजिए। उन्होंने कहा कि यह जो

आपोमयी ज्योति है यही तो शिशु के रूप में रहती है तब ही यह अपने में महान कहलाता है। यजमान जब यज्ञशाला में अग्नि का चयन करता है तो कहता है कि हे अग्निदेव! आओ, तुम मुझे तेजोमयी प्रदान करो। वह तेजोमयी प्रदान करता है, तेजोमयी देता रहता है। वही तो अग्नि तेजोमयी देने वाला है। उसी अग्नि के कारण राजा अपने राष्ट्र को ऊंचा बना लेता है। उसी के कारण समुद्रों में अग्नि प्रदीप्त हो जाती है, उसी अग्नि के कारण वैज्ञानिकजन विज्ञान की आभा में रत्न हो जाते हैं, समुद्रों में जो अग्नि प्रदीप्त हो जाती है उसको जानने लगता है। गृहस्वामी गृह को अग्नि से कैसे पवित्र बनाता है? जिस गृह में नित्यप्रति याग होते हैं, बाल्य बालिका उस याग को पान करके स्वर्गमयी बन जाते हैं। वही अग्नि है जो गृह को स्वर्ग बना देती है। बाल्य-बालिका माता-पिता के आचरणों पर चलता हुआ अपने गृह को स्वर्ग बना लेता है, न रुग्ण होता है, न कलह होती है। जिस गृह में कलह का वास बन जाता है वह गृह नारकीय बन जाता है और जिस गृह में सात्विकता है, एक-दूसरे में प्रसन्नता रहती है, वही गृह स्वर्ग बन जाता है। यह अग्नि ही है जो यजमान अग्न्याधान करता है, उसे यह प्राप्त होती रहती है।

वाचोक्तम अग्निपान यंत्र

महाराजा हनुमान, जो बड़े वैज्ञानिक थे, एक समय बड़वानल नाम की अग्नि को जानने के लिए तत्पर थे। यंत्र लगे हुए हैं और वह इस अग्नि को जानना चाहते हैं। जब बड़वानल नाम की अग्नि समुद्रों में प्रदीप्त हो जाती है तो जल प्लावन आ जाते हैं, प्राणी नष्ट हो जाते हैं, यह पृथ्वी जलमग्न हो जाती है। महाराजा हनुमान जी और गणेश जी ने अपने में चिन्तन करते हुए बारह वर्ष तक अनुसन्धान किया और अणु और परमाणुओं को जान करके उन्होंने विचारा कि इस अग्नि के ऊपर कैसे अधिपत्य कर सकते

हैं। अग्नि का चयन करते हुए उन्होंने विशाल यंत्रों का निर्माण किया। उस विशाल यंत्र का नाम वाचोकृतम अग्निपान कहलाया जाता था। एक समय समुद्रों में जब जलप्लावन का समय आया तो वायुमंडल ने निर्णय दिया कि जल प्लावन आने वाला है तो उस यंत्र को उन्होंने समुद्र में प्रवेश किया तो बड़वानल नाम की अग्नि शान्त हो गयी, समाज का जन-जीवन ऊंच बन गया। उन्होंने ऐसे समाज हितकर यंत्रों का निर्माण किया।

यह बड़वानल नाम की अग्नि कहलाती है, जिससे वैज्ञानिकजन सूक्ष्म विचार विनिमय करके अपने यंत्रों का निर्माण कर सकते हैं। राजा उस अग्नि का चयन करके अपने राष्ट्र को कैसे ऊंचा बना सकता है, आज मैं तुम्हें यही उद्गीत गाने के लिए आया हूँ। राजा इस अग्नि का गीत गाता हुआ अपनी सभाएं करता है और प्रजा को कहता है कि हे प्रजा! तुम सत्य उच्चारण करो, मैं भी सत्यवादी बनूंगा। जब तक मैं सत्यवादी नहीं बनूंगा तो प्रजा मेरी सत्यवादी नहीं बनेगी। तो राजा इस अग्नि को ले करके अश्वमेध याग करता है। द्वितीय याग उसका बलिवैश्व याग कहलाता है। बलिवैश्व याग क्या कि राजा के राष्ट्र में किसी भी प्राणी का हनन नहीं करना चाहिए। इतना अहिंसा परमोधर्मः राजा के राष्ट्र में आ जाना चाहिए कि एक दूसरा प्राणी-प्राणी का भक्षण न करे। वाणी से ही इन सबका प्रारम्भ होता है। जब राजा अपनी वाणी से यथार्थता के रूप में गीत गाता है तो प्रजा भी उसी प्रकार यथार्थ उद्गीत गाने लगती है और गाती हुयी प्रजा महान बन जाती है। बलिवैश्व याग द्वारा अन्न के भाग वह पितृ को भी देता है और जितने पक्षीगण हैं, जलचर हैं, सबको वह प्रदान करता रहता है।

अग्नि का चयन करता, अग्नि की आभाओं में जब रक्त होने लगता है तो राजा अपनी प्रजा से कहता है कि हे प्रजाओ! तुम अपने क्रियाकलापों में परिणित होते हुए प्रत्येक गृह में बलिवैश्व याग करो। क्योंकि बलिवैश्व

याग अग्नि में प्रदान किया जाता है, अग्नि उसे उसकी भावना के साथ प्रदान करती रहती है। इसी प्रकार राजा के राष्ट्र में यही अग्नि वाणी का स्वरूप धारण कर लेती है। जब वाणी कटु हो जाती है तो राजा के राष्ट्र में कटुता आ जाती है। जब यह वाणी मधुर बन जाती है तो यही वाणी राजा के राष्ट्र का उत्थान कर देती है। मुझे बहुत सा काल स्मरण आता रहता है जब वाणी के कारण यहां अग्नियां प्रदीप्त हो गयीं हैं। आज मैं उन वाक्यों में जाना नहीं चाहता हूं। विचार तुम्हें यह देने के लिए आया हूं कि आज हम अपने में विवेकी बन करके और वैज्ञानिक बन करके उस आभा को विचारने लगे जो आभा अपने से सम्बन्धित है। अपने से सम्बन्धित जो चिन्तनीय विषय हैं, उनको विचारते हुए अपने जीवन को ऊंचा बनाएं। राष्ट्र उस अग्नि का चयन करता हुआ ऊंचा बने।

मुझे भगवान राम का जीवन स्मरण आता है। भगवान राम ने यह घोषणा कर दी थी कि मेरे राष्ट्र में प्रत्येक गृह में याग होना चाहिए। महाराजा दिलीप ने भी यही घोषणा की थी कि प्रत्येक गृह में याग होना चाहिए। **जहां गृह-गृह में याग होते हैं वह राष्ट्र पवित्र बन जाता है।** मेरे विचार में एक वाक्य और आता रहा है कि जहां याग होते हैं वहां प्रत्येक मानव अपने कर्तव्य का पालन करता है, वहां राष्ट्र केवल नाम मात्र रह जाता है, राष्ट्र की कोई महत्वता नहीं होती। राष्ट्र की महत्वता वहां होती है जहां राष्ट्र अपने स्वार्थ में परिणित हो जाए और प्रजा के वैभव को संग्रह करने वाला बन जाए। आतातायी मुख्य हो जाते हैं तो वहां एक शासक की आवश्यकता हो जाती है। परन्तु जब शासक उनका शोषण करने लगता है, अपने ऐश्वर्य में परिणित हो जाता है, मृत्यु से वह भयभीत हो जाता है तो शासक और प्रजा में अन्तर्द्वन्द्व नहीं रहता। तो विचार विनिमय क्या कि आज हम इन वाक्यों को विचारने वाले बनें कि हमारा वेद क्या कहता है।

वेद कहता है कि राष्ट्र को अश्वमेध याग करना चाहिए। अश्वमेध याग का अभिप्राय यह कि जहां प्रजा और राजा मिल करके दोनों सुगन्धि करते हैं, ब्राह्मण को ऊंची स्थलि देते हैं, बुद्धिमान का आदर करते हैं और बुद्धिमान उनके अश्वमेध याग जब करता है तो राज्याभिषेक होता है। उसमें एक राजा का पूजन हुआ तो स्थलि को त्याग करके, राजा को स्थलि दे करके उसका उद्घोष करता ब्राह्मण नीची स्थलि पर विद्यमान होता है। उसके मूल में यह है कि जो महान शासक होता है, अश्वमेध याग का रचयिता होता है, प्रजा को सुखद देने वाला होता है, कर्तव्य की भावना देने वाला है, जो चरित्र आभा में निहित रहने वाला है, अपने को ऊंचा बनाता है और वह राष्ट्र के एक अंकुर को भी पान नहीं करता। जो प्रजा का भी सहायक है, क्रियाकलाप करता अन्न इत्यादि का उत्पादन करता है, उसको पान करके राष्ट्र का कार्य करता है जैसे प्रजा करती है तो राष्ट्र पवित्रता की आभा में रमण करता है। वही उद्घोष करके अश्वमेध याग के द्वारा अपनी प्रजा को महान बनाता है। यह अग्नि ही तो है जिस अग्नि का अग्न्याधान करता हुआ वह प्रजा को अपनी आभा में रत्न कराता है।

जिस अयोध्या की चर्चा करते मुझे बहुत काल हुआ, अयोध्या राष्ट्र में एक वर्ष में दो अश्वमेध याग होते थे तो अयोध्या महान बनी रही। अष्ट चक्रा, नौ द्वारों वाली वह अयोध्यापुरी बनी रही। राम के पश्चात् जब आगे काल आया, अयोध्या के अश्वमेध याग समाप्त हुए, नवीन-नवीन कांडों की उपलब्धियां होने लगीं। विचार यह है कि इस अग्नि का चयन करने वाला ही राष्ट्र को ऊंचा बना सकता है। इस अग्नि का चयन होना चाहिए। अग्नि यज्ञशाला में प्रदीप्त होती है। जो अग्नि मानव के श्वासों में प्रदीप्त होती है, वह अग्नि ही जठराग्नि बन करके रहती है। अग्नि ही माता के गर्भस्थल में विद्यमान हो करके बालक को ऊष्ण बनाए रहती है। अग्नि ही गार्हपथ्य अग्नि बनी हुई हैं। अग्नि ही आचार्य की वाणी में प्रदीप्त हो करके ब्रह्मचारी को ऊंचा बनाती है।

आओ मेरे प्यारे! विचार केवल यह कि अग्नि का चयन करना है। अग्नि का जो चयन कर लेता है, अग्नि को जो जान लेता है, वह बेटा! वैज्ञानिक बन जाता है। यह अग्नि है जिसको योगीजन अपने में धारण कर लेता है। योगी अपने आसन पर विद्यमान है, अग्नि का चयन कर रहा है। उस अग्नि की धाराओं को जानता हुआ प्राण को अपने में समेट लेता है। प्राण को समेट करके कहता है, यह अग्नि ही प्राण भूः, ब्रह्म, यह अग्नि ही प्राण है, यह अग्नि ही ऊर्जा है। यह वायु में गति के रूप में परिणित हो जाती है। यह अग्नि बड़ी विचित्र है जो प्राण में परिवर्तित हो जाती है, जो ऊर्ध्वा में प्राणशक्ति, सत्ता को प्रदान करने वाली है वही तो अग्नि विचित्रता में हमें ले जाती है। हमारे यहां पुरातन काल में नाना प्रकार की अग्निओं का चयन करने वाले बुद्धिमान पुरुष हुए हैं। प्राण रूपी अग्नि, जो श्वासों में निहित रहने वाली है, जो प्राणों को जान लेता है वह संसार की प्रतिक्रियाओं को जान लेता है। वह भी तो अग्नि है जो पृथ्वी में प्राण बह रहा है और नाना वनस्पतियों को रस प्रदान कर रहा है, सत्ता दे रहा है। वही प्राण मानव के शरीर में विद्यमान है। योगीजन विचारता है कि इस शरीर में तो आत्मा की छाया का नाम प्राण है और विचारवेत्ता विचारता-विचारता इस निर्णय पर चला जाता है कि जो प्राण पृथ्वी में बह रहा है, जो प्राण वायु में गमन कर रहा है, जो प्राण शब्दों को लिए गमन कर रहा है, वह प्राण विश्वभान होता है। विश्वभान प्राण प्रभु की छाया कहलाती है। ऋषि योगाभ्यास करता हुआ आत्मा की छाया को परमात्मा की छाया से, जब व्यष्टि को समष्टि में प्रवेश कर देता है तो वह योगेश्वर बन जाता है। तो विचार क्या कि इस अग्नि का हम अपने में चयन करते चले जाएं। जब योगी इसी अग्नि को चयन कर लेता है, प्राण सूत्र में इसको पिरो देता है और प्राण को आत्मा में पिरो देता है तो मुनिवरो! प्रभु का दर्शन हो जाता है। इसी अग्नि का चयन करके वैज्ञानिकजन यन्त्रवादी बन जाते हैं।

महर्षि वैशम्पायन ऋषि महाराज जब इस प्रकार का निर्णय देने लगे तो महर्षि विभांडक मुनि बोले कि प्रभु! आपने तो अनुपम ब्रह्मांड को हमारे समीप नियुक्त कर दिया है। भगवन्! आपका एक वाक्य अधूरेपन में रह गया कि माता के गर्भस्थल में जो शिशु विद्यमान होता है वह कौन सी माला को धारण करता है? महर्षि वैशम्पायन ने कहा कि वह उस माला को धारण करता है जो सब देवता उसके समीप उसकी रक्षा करते हैं। चन्द्रमा में से कान्ति को लेता है, सूर्य में से ऊर्जा को लेता है, अग्नि में से उष्णता को लेता है, आपो में से ज्योति को लेता है और वायु में से प्राणसत्ता उसके समीप आती है और प्राणसत्ता से प्रकाश आता है और इन सबकी माला को शिशु माता के गर्भस्थल में धारण कर लेता है। जब इन मनको की माला को शिशु अपने में पिरो लेता है तो सर्वत्र ब्रह्मांड का चित्रण उसके मस्तिष्क में, लघु-मस्तिष्क में, रेणुकेतु मस्तिष्क में समाहित हो जाता है।

मानव के तीन प्रकार के मस्तिष्क माने हैं। कहीं-कहीं वेद मन्त्रों में पांच प्रकार के मस्तिष्क माने हैं। इन मस्तिष्कों की चर्चा तो मैं किसी अन्य काल में करूंगा जब वेदमन्त्र इस प्रकार के आयेंगे। आज तो केवल में इतना उच्चारण कर रहा हूं कि यह बड़ा गम्भीर विषय है। इसके ऊपर विचारना, इस माला को हमें धारण करना है। कोई भी यह नहीं कह सकता कि मैं इस माला को धारण नहीं कर रहा हूं। प्रत्येक मानव इस संसार के वैभव में आ करके अपने अन्धकार में, अज्ञानता में आ करके उस माला को दमन कर लेता है। मन उसे बारम्बार कहता रहता है कि अरे मानव! तू जागरूक हो जा। यह मन से प्रेरणा आती है, जब भ्रमण करने की प्रवृत्ति और अन्तरिक्ष में उड़ान उड़ने की प्रवृत्ति बाध्य करती है, **आत्म प्रेरणा जो संकेत देती है उस प्रेरणा को स्वीकार करना चाहिए।** महर्षि वैशम्पायन बोले कि हे ऋषियो! तुमने यह जाना है? उन्होंने कहा कि सत्यमयी प्रभु।

महर्षि विभांडक बोले कि हम यह जानना चाहते हैं कि हनुमान जी ने और गणेश जी, जो आप ने अभी-अभी वाक्य कहा था, वह समुद्रों के तटों पर विद्यमान हो करके कौन से यन्त्र का अध्ययन करते थे और उस यन्त्र में कौन सी शक्ति प्रधानता में रहती थी। ऋषि विभांडक जी ने जब यह प्रश्न किया तो महर्षि वैशम्पायन ने कहा कि हे प्रभु! हनुमान जी सूर्य विद्या के जानने वाले थे। सूर्य में जितनी भी ऊर्जा है, उसे वह जान सके और उसका वह अपने कंठ से उद्गीत गाते रहते थे। गणेश जी और वह एक वेद मन्त्र को ले करके उपस्थित हुए और उसी के ऊपर उन्होंने याग प्रारम्भ किया। याग में जो यह अग्नि है, इसमें वह सप्त जिह्वा कान्ति होती है, जो वह द्यौ से लेता है और द्यौ से ले करके काष्ठों में सूर्य का समन्वय होता है। उस समन्वयित क्रिया को वह जानते थे। सूर्य की वह किरणें जो समिधा में से जल को अपने में शोषण कर लेती है और जल में से आपो की अग्नि को अपने में ग्रहण करके, जल से परमाणुओं को यन्त्रों में भरण करना, अग्नि के परमाणुओं की पुट लगाना, यन्त्रों का निर्माण करना, जब भी जल प्लावन आया, अग्नि को शान्त करने के लिए जो जल का मूलतत्त्व है, उस मूलतत्त्व को सूर्यतत्त्व से मिलान करके उन परमाणुओं का प्रहार किया जाता है यह उन्होंने अपना निर्णय दिया और अन्त में महर्षि मौन हो विचारने लगे कि इन वेद मन्त्रों के ऊपर मैं और भी अनुसन्धान करूंगा।

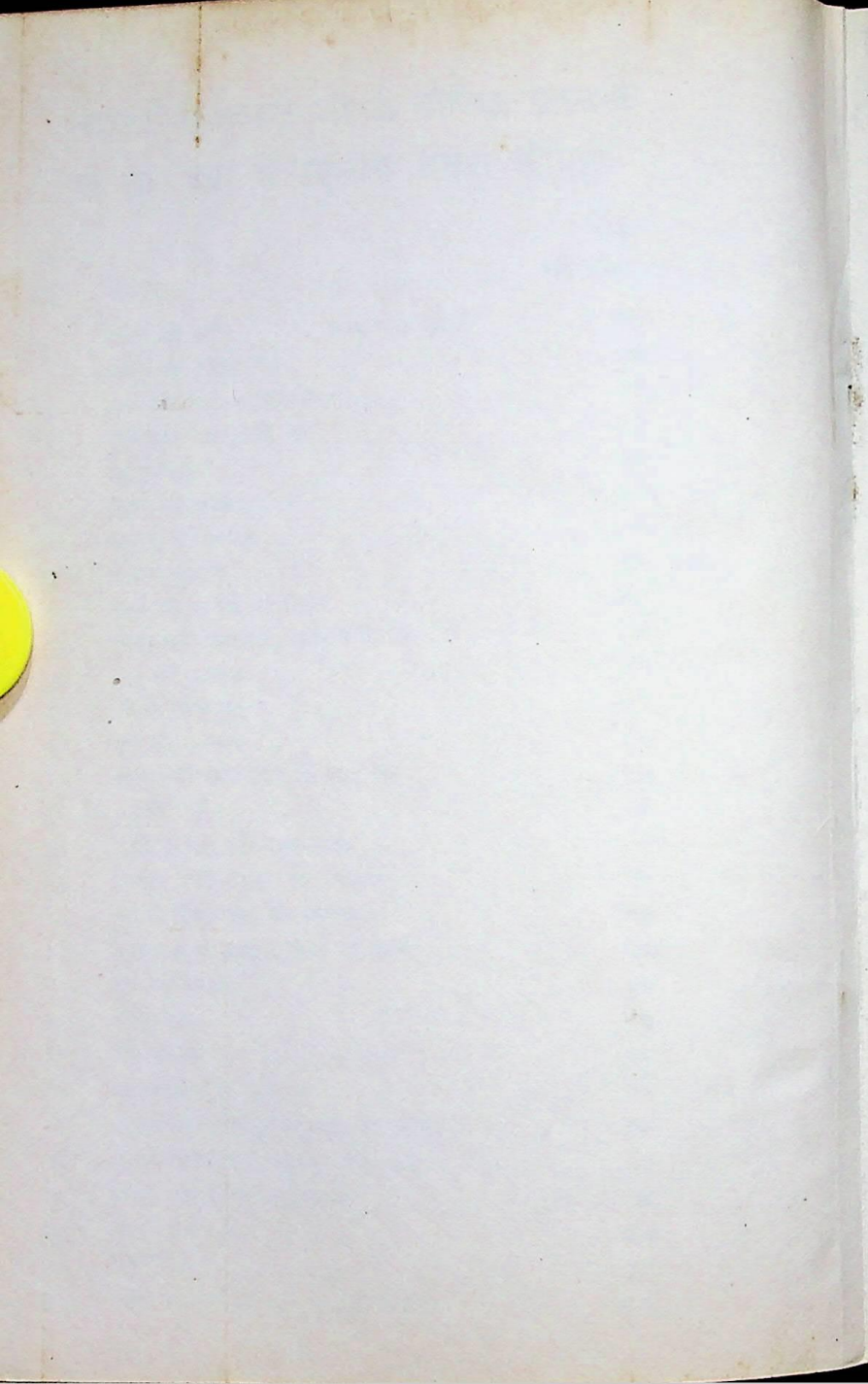
आज के हमारे वाक्य उच्चारण करने का अभिप्राय यह कि हम परमपिता परमात्मा की आराधना करते हुए, देव की महिमा का गुणगान गाते हुए योगेश्वर बनने का प्रयास करें। मानव योगेश्वर बन जाता है, वैज्ञानिक बन जाता है और अपने को ऊंचा बनाता हुआ इस संसार सागर से पार हो जाता है। यह है बेटा! आज का वाक्य! समय मिलेगा तो शेष चर्चाएँ हम कल प्रकट करेंगे। आज का वाक्य समाप्त, अब वेदों का पठन-पाठन होगा।

सरोजनी नगर, नई दिल्ली

११-१०-१९८६

ब्रह्मचारी कृष्णदत्त जी के यौगिक प्रवचनों के मूल स्वर में उपलब्ध श्रवण कैसेट्स

क्रम सं.	विषय	कैसेट की संख्या
१.	वाणी की अग्नि (वेद मंत्रों सहित)	एक
२.	आत्मा का भोजन-यज्ञ	एक
३.	याग और योग का समन्वय	एक
४.	अग्निष्टोम याग/ब्रह्म याग	एक
५.	लंका विज्ञान	एक
६.	विष्णु की व्याख्या	एक
७.	सविता की व्याख्या	दो
८.	ब्रह्मर्षि भारद्वाज	एक
९.	चित्त की वृत्तियों का निरोध	तीन
१०.	संसार एक यज्ञशाला/यज्ञमान का रथ	एक
११.	मृत्यु की व्याख्या	एक
१२.	विजयदशमी पर्व	एक
१३.	राम का रामराज्य	एक
१४.	आत्मा की शरीर त्याग के बाद गति	एक
१५.	धनुर्याग	एक
१६.	महर्षि कपिल और राजा सगर	दो
१७.	निर्मोही नगरी/अमृत की व्याख्या	एक
१८.	गृह में याग/मृत्यु की व्याख्या	एक
१९.	महाभारत के उपरान्त भारत का पतन	एक
२०.	तप की व्याख्या	एक
२१.	सौर मंडल	एक
२२.	इन्द्र व्याख्या	एक
२३.	लाक्षा मंडप का इतिहास	एक
२४.	ब्रह्मर्षि शिकामकेतु/वसुन्धरा की व्याख्या	एक
२५.	ब्रह्मर्षि विश्वामित्र/ब्रह्मसूत्र की व्याख्या	एक
२६.	द्रौपदी चीर हरण/जयद्रथ वध	एक
२७.	माता मल्दालसा	एक
२८.	प्राण विद्या	एक
२९.	महर्षि महानन्द के प्रश्न-गुरुदेव के उत्तर	चौदह





पूज्यपाद ब्रह्म० कृष्णदत्त जी

ब्रह्मचारी कृष्णदत्त जी इस युग के अद्भुत वेद वक्ता थे। इस जन्म में उन्हें किसी विद्यालय में शिक्षा प्राप्त करने का अवसर नहीं मिला परन्तु वे पूर्व जन्मों की स्मृति से वेद संहिताओं का पाठ और फिर उन मंत्रों की व्याख्या करते थे। अपने प्रवचनों में उन्होंने पूर्व जन्मों में देखी अनेक घटनाओं का विवरण दिया जिनसे प्राचीन भारतीय इतिहास के कई लुप्त अथवा विकृत तथ्यों की बुद्धिसंगत वास्तविकता का पता चलता है।

ब्रह्मचारी कृष्णदत्त जी कर्मों के भोग, आत्मा के पुनर्जन्म और अंतःकरण से जन्म-जन्मान्तरों के संचित ज्ञान के स्पष्ट प्रमाण थे। पन्द्रह अक्टूबर १९९२ को उन्होंने ५० वर्ष की अवस्था में अपने नश्वर शरीर को त्यागा परन्तु इसकी उद्घोषणा उन्होंने ३० वर्ष पहले ही ९ मार्च १९६२ को कर दी थी।

उनके कुछ महत्वपूर्ण प्रवचनों का संग्रह इस पुस्तक में किया गया है।

वैदिक अनुसन्धान समिति (पंजीकृत)

१, (प्रथम तल) गोखले मार्केट, तीस हजारि कोर्ट के पास,

दिल्ली-११००५४

फोन: २५१००७१, २९३२९०४